भूदान-यज्ञ

www.vin

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक– साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ४५

सोमवार ११ अगस्त, '६९

अन्य पृष्ठों पर

श्री हरिभाऊ का स्पष्टीकरण ५५४

सत्ताधारी बनाम शस्त्रधारी —सम्पादकीय ५५५

ग्राम-स्वराज्य में आदिवासियों की ताकत बढ़ेगी —हरमन लकड़ा ५५६

सामाजिक क्रान्ति और क्रान्ति-पद्धतियाँ —जयप्रकाश नारायण ५५७

लोकमन की कहानी —गुरुशरण ५६०

बैंकों का राष्ट्रीयकरण —सुरेशराम ५६२

महाराष्ट्र सर्वोदय-मंडल... —राही ५६५

शाहाबाद जिलादान के बढ़ते चरण —सत्यनारायण सिन्हा ५६७

बिहार का तेरहवाँ जिलादान हजारीबाग —हेमनाथ सिंह ५६८

आवश्यक सूचना

तीन वर्षों से 'भूदान-यज्ञ' के परिशिष्ट के रूप में हर महीने 'गाँव की बात' के दो अंक हम देते रहे हैं। पर अब 'गाँव की बात' 'भूदान-यज्ञ' के परिशिष्ट के रूप में नहीं प्रकाशित होगी। 'गाँव की बात' के पाठक 'गाँव की आवाज' के नाम से अलग चार रुपये चन्दा भेजें। 'गाँव की आवाज' का पहला अंक १६ अगस्त को प्रकाशित हो रहा है। — व्यवस्थापक

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन,
राजघाट, वाराणसी–१ उत्तरप्रदेश
फोन : ४२८५

स्वाधीनता और लोकतंत्र

"आज स्वाधीनता-दिवस है। जबतक हम लोग परतंत्र थे, तबतक इस उत्सव को मनाया करते थे। आज हम लोग स्वतंत्र भी हो गये हैं। 'एक दिन हम लोग स्वतंत्र हो जायेंगे; यह मान्यता अभी तक केवल भ्रम के रूप में ही थी, किन्तु आज उसे हम प्रत्यक्ष साकार देख रहे हैं। तब हम इस उत्सव को क्यों मनायें? क्या हम जिसे भ्रम कहते थे, वह झूठ हो गया, इसलिए? आज हम यह उत्सव इसीलिए मना सकते हैं कि हमारी अनेक नयी आशाएँ परिपूर्ण हों। अब भारत के सात लाख गाँव स्वतंत्र होकर यह दिखायें कि भारत का सच्चा सोना और समीर तो हम ही हैं। यह नूर दिखाना स्वतंत्रता में ही संभव है।"[१]

"लगता है कि अभी मुझे सोचने को काफी रह गया है। क्योंकि जो जहाँ हों, वे वहाँ शान्ति से बैठकर काम नहीं करते। सब यही मानते हैं कि सारा काम तो दिल्ली में रहने पर ही होता है। हम लोगों से शहरों का मोह छूटता ही नहीं। असंख्य गाँवों की बदौलत ही आज दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई जैसे शहर बने हैं। उनकी भी परवाह नहीं। फिर भी आखिर लोगों का नैतिक जीवन ऊँचा उठने के बदले आज अत्यधिक बिगड़ गया है। परिणामस्वरूप हुल्लड़ और अराजकता बढ़ गयी है। इसलिए अगर हम यह सारा मूल रोग नहीं मिटाते और जीवन-दर्शन के लम्बे-चौड़े भाषण देते हैं, तो अब चल नहीं सकता। हमें लोगों को काम देना होगा और स्वयं भी काम करना होगा। अब ही तो कसौटी है। अगर इस कसौटी पर आप खरे उतरें, तो ठीक; नहीं तो उसमें भी अपनी असफलता जाहिर कर मैं नया रास्ता अपनाऊँगा। मैं तो 'आज क्या सच है और क्या सच लगता है' इसी पर निर्भर हूँ। अगर कल का सच हो, तो उसे अपनाऊँगा, नहीं तो उसे फेंक देने में भी क्षणभर का विलम्ब न करूँगा। इसलिए यह सब आप लोगों को सोचना होगा। मैं तो जैसा हूँ, वैसा ही हूँ। अगर मुझे अपने इस मंत्र में कुछ भी हानि दीख पड़े, तो उसे जैसी-की-तैसी पेश कर दूँगा। कारण, मुझ पर सर्वसाधारण जनता जो अटल विश्वास रखती है, उसका मुझसे विश्वासघात हो ही नहीं सकता। मैं जनता का हूँ और जनता मेरी है। इसलिए मेरे पास व्यक्तिगत जीवन-जैसा कुछ भी नहीं है, यह सभी को विचारपूर्वक समझ लेना चाहिए।"[२]

"व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बिना समाज का निर्माण करना सम्भव नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य अपने सींग या पूँछ नहीं उगा सकता, उसी प्रकार यदि उसमें स्वयं विचार करने की शक्ति नहीं है, तो वह मनुष्य के रूप में अपना अस्तित्व नहीं रख सकता। अतः लोकतंत्र वह अवस्था नहीं है, जिसमें लोग भेड़ों की तरह बर्ताव करें।"[३]

मो. क. गांधी

(१) 'अन्तिम झाँकी' : पृष्ठ-२०८, (२) पृष्ठ-४८, (३) 'गांधी की कहानी' पृष्ठ-१९०।

www.vinoba.in

श्री हरिभाऊ उपाध्याय का स्पष्टीकरण

"भूदान-यज्ञ" दिनांक १४ जुलाई '६९ में आपने मेरा लेख छापने की कृपा की इसके लिए धन्यवाद। उसके बाद के ही अंक, दिनांक २१ जुलाई '६९, में श्री अनिकेत का आलोचनात्मक लेख मैंने पढ़ा। इसलिए मैं कुछ बातें स्पष्ट कर देना चाहता हूँ।

दिनांक ११ या १२ जून को मुझे टेलीफोन से अजमेर से बताया गया कि जय बाबू ने दिल्ली की एक मीटिंग में नक्सालपंथियों के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें कही हैं, जिससे मित्रों को क्षोभ हुआ और उन्होंने उसका सार भी मुझे बताया। दिनांक १३ जून को एक पत्र मैंने श्री जय बाबू को लिखा, जिससे मुझे सही स्थिति मालूम हो जाय, परन्तु मुझे २६ जून तक उनका कोई उत्तर नहीं मिला।

इधर उसी आशय के समाचार मैंने समाचार-पत्रों में देखे और उन समाचारों का खण्डन श्री जय बाबू की ओर से नहीं आया। तब मैंने २६ जून को अपना लेख लिखकर आपको भेजा। यदि श्री जय बाबू की ओर से कोई पत्र या स्पष्टीकरण मुझे मिलता तो मुझे उक्त लेख लिखने की आवश्यकता नहीं होती। अपने लेख की एक प्रति भी मैंने श्री जय बाबू को भेजी थी। इससे आप जान सकेंगे कि जय बाबू पर हमला करना तो दूर, उनको किसी विवाद में डालने की भी मेरी मंशा नहीं थी।

श्री जय बाबू से मेरा सम्बन्ध लगभग ४० वर्ष पुराना है और मेरे मन में उनके प्रति स्नेह और आदर किसीसे भी कम नहीं हैं। इस बात को जय बाबू स्वयं जानते हैं। श्री जय बाबू से यहाँ दिल्ली में अब अच्छी तरह बात हो गयी है और हम दोनों में से किसीके मन में कोई खटका नहीं है।

श्री अनिकेत ने अपनी नाराजगी में 'गांधीवालों को' नाहक ही बुरा-भला कह डाला। गांधी का तो विशाल परिवार है, जिसमें हम सब छोटे-बड़े, कच्चे-पक्के, लँगड़े-लूले आ जाते हैं। बापू के बाद कम-से-कम मैंने तो बाबा को ही इस परिवार का बुजुर्ग माना है, और इस मान्यता में अब तक कोई कमी नहीं आयी है। मेरे लेख में सिर्फ एक ही प्रश्न है कि जो हम किसी भी रूप में अहिंसा में आस्था रखते हैं वे तबतक हिंसात्मक साधनों के आश्रय की ओर संकेत नहीं कर सकते, जबतक कि अहिंसा के शस्त्रागार के एक भी शस्त्र काम में नहीं लाया गया हो।

एक और बात की ओर भी आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। "हिन्दुस्तान" दैनिक २९जून में श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'का लेख छपा है, जिसमें अंतिम अंश इस प्रकार है :

"देश का नेतृत्व अपनी क्रान्तिकारी भावना खो बैठा है और उसे खोजने के लिए आन्दोलन की नहीं, आहुति की आवश्यकता है। इस समय सिर्फ ग्यारह आहुतियों की आवश्यकता है, जो गांधीजी की समाधि पर अपने अनशन द्वारा जीवन का उत्सर्ग करें। उचित है कि श्री जयप्रकाश नारायण इसे आरम्भ करें। मेरी आत्म-चेतना में यह बात स्पष्ट है कि एक-दो आहुतियों के बाद उनमें से छाँटना कठिन हो जायगा। मुझे आशा है कि राष्ट्र के चिन्तक इस प्रश्न पर विचार करेंगे, क्योंकि प्रजातंत्र की रक्षा के लिए सामाजिक क्रान्ति के इस रथ को आगे बढ़ाने का और कोई उपाय नहीं है।"

इसके उत्तर में मैंने एक लेख ५ जुलाई '६९ को "हिन्दुस्तान" में भेजा, जो छप गया है। उसका अन्तिम अंश इस प्रकार है :

"श्री प्रभाकरजी ने जयप्रकाश बाबू को आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा दी है, इसका कारण यह हो सकता है कि जय बाबू सर्वोदय के नेता हैं और देश में अहिंसावादियों पर उनका काफी प्रभाव है। परन्तु मैं समझता हूँ कि व्यक्ति-विशेष की ओर ऐसा संकेत करना और सार्वजनिक रूप से इस प्रकार किसीका आह्वान करना उचित नहीं होगा। यदि हम स्वयं यह मानते हों कि प्राणोत्सर्ग की आवश्यकता है तो ऐसा माननेवाले व्यक्ति ही पहले स्वयं अपने लिए ऐसा क्यों न सोचे? निःसंदेह जयप्रकाश बाबू उन महान व्यक्तियों में हैं कि यदि उनके मन में लग जायगा कि देश को उनके प्राणोत्सर्ग की आवश्यकता है तो किसीसे पीछे नहीं रहेंगे। क्योंकि उनके जीवन का एक-एक कण त्याग और बलिदान के भावों से भरा हुआ है।"

२२-७-'६९ —हरिभाऊ उपाध्याय

लोगों का भ्रम और मेरी भावना

"हमने कहा था दिल्ली में, कि अगर नक्सालवादी लोग यह चाहते हैं कि सत्ता अपने लिए हासिल करें, तो उससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। फिर मेरी कोई सहानुभूति उनके लिए नहीं है। लेकिन अगर वे यह कहते हैं कि वे जनता के लिए सत्ता लेना चाहते हैं, जनता को सत्ता मिले, जनता के हाथों में सत्ता आये, तो वह जो हिंसा का रास्ता है वह गलत रास्ता है, यह मैं उनको समझा सकता हूँ; क्योंकि वे प्रत्यक्ष क्रान्ति के क्षेत्र में हैं। वे लोकसभा, विधानसभा में नहीं बैठे हैं, जहाँ धोखा है क्रान्ति का!"

कुछ लोगों को भ्रम हुआ, बहुत-से लोगों ने हमको गालियाँ दीं। "कलकत्ते के आस-पास जहाँ मजदूरों की बस्तियाँ हैं, आप उसे देख लें, क्या है उनका जीवन? उन्हींके श्रम पर ये सारी अट्टालिकाएँ खड़ी हैं, यह दौलत है, सारा धन है, और वे सूअर की तरह रह रहे हैं। अब उसमें कोई 'सेन्सिटिव' (संवेदनशील) आदमी, बेसब्र हो जाय, और हिंसा का रास्ता अख्तियार कर ले, तो मैं उसकी निन्दा तो हरगिज नहीं करूँगा। तो लोगों ने कहा कि जयप्रकाश तो हिंसा का प्रचार कर रहा है। हमने कहा कि चौरंगी में अच्छा एक रेस्तराँ है, रोटी-मिठाइयाँ बनाने की दूकान है, और शीशे के पीछे सब चीजें सजायी हुई हैं खाने की, और उसके सामने जो नाली है उस नाली में से भूखे, जो कुछ खाद्य पदार्थ दिखाई देता है, उसे निकालकर खाते हैं, चाहे वे बूढ़े हैं, चाहे वे बच्चे हैं, तो क्या वह सहन करने लायक है? अगर उनमें से कोई शीशे के परदे को तोड़कर, लूटकर खा ले, तो क्या हम उसकी निन्दा करेंगे? उसको जेल भेजेंगे? शांति और सुव्यवस्था का सवाल उठायेंगे?"

पूसारोड :
२३-६-'६९ —जयप्रकाश नारायण

www.vinoba.in

सम्पादकीय

सत्ताधारी बनाम शस्त्रधारी

अबतक जो प्रतिनिधि करते थे, वह इस बार पुलिसवालों ने किया। यह पहला अवसर नहीं है जब बंगाल की विधानसभा में अत्यंत अभद्र प्रदर्शन हुआ है। प्रतिनिधियों ने अपनी करनी से लोकतंत्र का मुँह कुछ कम काला नहीं किया था, लेकिन पुलिसवालों ने तो जो कुछ बचा था उसे भी पूरा कर दिया। हमारा यह लोकतंत्र प्रतिनिधियों और प्रशासकों के दोहरे प्रहार से जर्जर हो चुका है; अगर किसी दिन सेना का दिमाग फिर गया तो उसका अंत ही समझिए।

विधानसभा में घुस जाना, तोड़-फोड़ करना, नारे लगाना, प्रतिनिधियों पर हाथ छोड़ना, आदि काम और अनुशासनहीनता के हैं, इसमें कोई शक नहीं। जिस सरकार की पुलिस इस हद तक जा सकती है, वह अन्दर से कितनी खोखली होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है। हमारा सारा राजनैतिक और प्रशासनिक ढाँचा खोखला हो चुका है। यह दूसरी बात है कि यह खोखलापन इस भयंकर रूप में इस बार कलकत्ता में प्रकट हुआ है। कहीं भी प्रकट हो, पर प्रश्न यह है कि पुलिस इतनी अनुशासनहीन हुई कैसे? क्या ऐसी बात है कि वह कल शाम तक बहुत अनुशासित थी, और आज सुबह अचानक पागल हाथी की तरह उन्मत्त हो गयी? पुलिसवालों का कहना है कि एक ओर तो उनसे कहा जाता है कि गुण्डागिरी को रोको, दूसरी ओर दलों के स्थानीय नेता उन पर धौंस जमाते हैं। पुलिसवालों की शिकायत है कि वे दलबंदी के शिकार बनाये जा रहे हैं। दूसरी ओर पुलिस-मंत्रीजी का कहना है कि पुलिस की ज्यादतियों से कितनों को मौत का शिकार होना पड़ता है, अगर एक बार एक पुलिसवाला भीड़ की ज्यादती से मर गया तो कौनसा आसमान फट पड़ा। तथ्य यह सही है, लेकिन क्रूर व्यंग्य तर्क नहीं हो सकता। मंत्रीजी की नजर में पुलिसवाले सहानुभूति के पात्र थे, लेकिन वे तो घृणा और हिंसा से पागल हो उठे, और अनुशासन को भूलकर अपराधी बन गये।

अनुशासन किसे कहते हैं? अगर अनुशासन का अर्थ शासन के पीछे चलना हो तो मानना पड़ेगा कि हमारे देश की पुलिस हमेशा अनुशासित रही है। अंग्रेजों के राज में वह वफादारी के साथ अंग्रेजी शासन के पीछे चली। जब देश स्वतंत्र हुआ और कांग्रेस का राज हुआ तो पुलिस ने कांग्रेस के प्रति वफादारी दिखायी। लेकिन धीरे-धीरे कठिनाई तब पैदा हुई जब शासक दल ने पुलिस का इस्तेमाल अनुचित और गैरकानूनी तरीके से दूसरे दलों के खिलाफ करना शुरू किया; बल्कि एक ही दल के सत्ताधारी गुट ने दूसरे गुट के खिलाफ इस्तेमाल किया। जब संविद-सरकारें बनीं तो यहाँ तक नौबत आयी कि अनेक अवसरों पर सरकार में शरीक एक दल के पुलिस-मंत्री ने पुलिस को एक आदेश दिया और दूसरे दल के मंत्री ने, जिसका दल उपद्रव में शरीक था, पुलिस के उचित काम में रुकावट डाली। कौन नहीं जानता कि अनेक चोर, डाकू, बदमाश और गुण्डे, राजनीतिक दलों में प्रभाव रखनेवाले सदस्य हैं, और अपने समाज-विरोधी कामों में नेताओं से प्रश्रय पाते हैं। वे नेताओं से अपनी वफादारी का पुरस्कार गुण्डागिरी की खुली छूट के रूप में वसूल करते हैं। केवल पुलिस ही नहीं, न्याय और शिक्षा-विभाग तक नेताओं और उनके पिछलग्गुओं की करतूतों से कुत्सित हो चुके हैं। कौन नहीं जानता कि ये करतूतें राजनीति का मान्य अंग बन चुकी हैं, और कौन नेता, छोटा या बड़ा इनसे मुक्त है?

पुलिस को हिंसा की शक्ति समाज से प्राप्त हुई है, इसलिए उसकी हिंसा का इस्तेमाल कानून के अनुसार होना चाहिए। लेकिन एक बार जब समाज में हिंसा की हवा बह जाती है, तथा स्वयं सरकार और उसमें शामिल दल हिंसा को अपने कार्यक्रम का अंग बना लेते हैं, तो इतना होने पर भी कानून की मर्यादाओं और समाज के संस्कारों का कायम रहना असंभव है।

बंगाल में इस वक्त सारा वातावरण हिंसा से भरा हुआ है। राजनीति के अस्त्र के रूप में हिंसा का खुला प्रयोग ही नहीं समर्थन भी हो रहा है। यह घोषणा-सी कर दी गयी है कि भूमिहीनों और गरीबों की समस्याओं का कोई शान्तिपूर्ण हल नहीं है, यद्यपि सही शान्तिपूर्ण हल ढूंढ़ने और लागू करने की कभी कोई कोशिश नहीं की गयी है। इसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ है कि क्या विद्यार्थी, क्या छोटे किसान, और क्या भूमिहीन, और नीचे के कर्मचारी, सब मानने लगे हैं कि उनके लिए एक ही मार्ग है—उपद्रव और हिंसा। समाज के बड़े लोग अपनी हिंसा छिपा लेते हैं कानून की आड़ में; छोटे लोग अपनी हिंसा दिखा रहे हैं कानून को तोड़कर। राजनीति की एक धारा एक हिंसा को बढ़ा रही है, तो दूसरी धारा दूसरी हिंसा को।

लोकतंत्र में बदलती हुई पार्टी-सरकारें अगर पुलिस और प्रशासन को अपनी राजनीति का साधन बनायेंगी तो केवल डाँट और दण्ड से अनुशासन नहीं रखा जा सकेगा। यह बिलकुल गलत है कि मंत्री का आदेश कानून का स्थान ले। अगर प्रशासन निर्धारित नीतियों के अनुसार काम करने को स्वतंत्र नहीं होगा तो वह अपने किये हुए कामों के लिए जिम्मेवार नहीं होगा।

कलकत्ता में शस्त्रधारियों द्वारा सत्ताधारियों पर प्रहार मन को आशंकाओं से भर देता है। पुलिस को सेना की शक्ति से दबाना समस्या का न सही हल है, न स्थायी। सेना की जीत वास्तव में शस्त्र-शक्ति की जीत है जिससे अन्त में लोकतंत्र के स्थान पर सैनिकवाद के ही लिए रास्ता साफ होता है। वास्तव में सत्ता के विकेन्द्रित होने और लोकशक्ति के उदय होने में ही लोकतंत्र की सुरक्षा है। लेकिन लोकतंत्र का 'लोक' अभी सोया हुआ है। उसे जानना चाहिए कि उसके प्रतिनिधियों की सत्ता भी शस्त्रधारियों की शक्ति पर ही टिकी हुई है, इसलिए लोकतंत्र का प्रश्न सचमुच सत्ताधारी बनाम शस्त्रधारी नहीं है, बल्कि नागरिक-शक्ति बनाम सैनिक-शक्ति है।●

ग्रामस्वराज्य में आदिवासियों की ताकत बढ़ेगी

—राँची के आदिवासी नेता श्री हरमन लकड़ा की स्वीकारोक्ति—

[श्री हरमन लकड़ा, एम० एल० सी० छोटानागपुर क्षेत्र के गिने-माने नेता हैं। वे सिमडेगा अनुमंडलीय ग्रामदान-प्राप्ति समिति के उपाध्यक्ष हैं, और १५ अगस्त तक अनुमंडलदान पूरा करने में सक्रिय रूप से लगे हुए हैं। प्रस्तुत हैं "भूदान-यज्ञ" के प्रतिनिधि के प्रश्नों पर उनके जवाब।]

प्रश्न : आपने ग्रामदान-पत्र पर हस्ताक्षर किया है। इसके पीछे आपकी क्या दृष्टि है ?

उत्तर : ग्रामदान को सफल बनाना है, इसलिए हस्ताक्षर किया। विनोबाजी ने ग्राम-स्वराज्य का जो चित्र सामने रखा है, वह आदर्श बहुत अच्छा है और इसमें सबकी भलाई है। यहाँ पर कुछ पार्टी के लोग धर्म के नाम पर तनाव पैदा करते हैं। एक-दूसरे के धर्म का विरोध करने से आपस में दुश्मनी पैदा होती है। यह तनाव खतम होगा, ग्रामस्वराज्य से आपस में भाईचारा पैदा होगा और मिलजुलकर काम करेंगे, तो प्रेम बढ़ेगा और सबकी ताकत बढ़ेगी। फिर आदिवासियों की जमीन गैर-आदिवासियों को देने की जो शंका थी, उसका भी निरसन हो गया, क्योंकि कानूनी तौर पर वह जमीन आदिवासियों में ही बँटेगी।

प्रश्न : झारखंड प्रान्त की माँग की जाती है। एक सर्वमान्य भाषा के अभाव में उस प्रान्त का शासन कैसे चलेगा ?

उत्तर : प्रान्तों का बँटवारा भाषा के अनुसार किया गया, लेकिन मैं इसे ठीक नहीं मानता। प्रशासन के ख्याल से इसे करना चाहिए था। उत्तर बिहार और यहाँ छोटानागपुर के क्षेत्र की समस्याएँ बिलकुल भिन्न हैं। यह पहाड़ी और जंगली इलाका है, इसलिए हम माँग करते हैं कि इसका अलग राज्य हो, जिससे प्रशासन आदि में सुविधा हो। झारखंड राज्य की भाषा हिन्दी ही होगी। हिन्दी से हमारा कोई विरोध नहीं है।

प्रश्न : ईसाई आदिवासियों को गैर-ईसाई आदिवासियों के मुकाबले आर्थिक, शैक्षणिक सुविधाएँ अधिक मिलती हैं। सरकारी छात्रवृत्ति वगैरह भी वे ही हथिया लेते हैं। इससे गैर-ईसाई आदिवासी पिछड़े रह जाते हैं। फिर सरकार जो पिछड़े लोगों को आगे बढ़ाना चाहती है, उसकी वह मंशा तो पूरी नहीं हो पाती ?

उत्तर : जो आदिवासी ईसाई हो गये हैं, उनको कुछ शैक्षणिक लाभ मिशन के कारण मिलता है। लेकिन आर्थिक परिस्थिति गैर-ईसाई आदिवासी और ईसाई आदिवासी की एक-सी है। आर्थिक सुविधाएँ ईसाई होने के नाते मिलती हैं, यह गलत ख्याल है। चर्च में आने से एक जगह मिलने-जुलने का मौका उनको अवश्य मिलता है। यह उनका धार्मिक और सामाजिक संगठन का लाभ है। इसमें आर्थिक सुविधा नहीं मिलती है। मिशन के स्कूलों में गैर-ईसाई भी पढ़ने के लिए आते हैं, उनके लिए कोई रोक नहीं है। यह ठीक है कि जो ईसाई हुए हैं वे पढ़-लिखकर आगे बढ़े हैं, भद्र हुए हैं। गैर-ईसाई आदिवासी और ईसाई आदिवासी में जो भेद पैदा किया जाता है वह गलत है। ईसाई हो जाने से हमारा आदिवासी होना समाप्त नहीं होता। सरकारी छात्रवृत्ति के लिए किसी गैर-ईसाई आदिवासी छात्र को पढ़ना छोड़ना नहीं पड़ा है। जब वे पढ़ते ही नहीं, तब छात्रवृत्ति किसको दी जाय ? जो पढ़ते हैं उन्हें दी जाती है।

आदिवासियों को नौकरी मिलने का जहाँ तक सवाल है, मेरा कहना है कि यहाँ पर जो प्रशिक्षण आदि का काम चलता है, शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालय चलता है, उसमें उनको लेने की प्राथमिकता होनी चाहिए। जो बड़े ओहदे आदि होते हैं, उनमें तो अब शिक्षण इतना बढ़ गया है कि उन्हींमें प्रतिद्वन्द्विता होती है, और जो आगे आता है उसको वह पद मिलता है। उसमें या किसी और क्षेत्र में ईसाई, गैर-ईसाई का भेद करना गलत है। आदिवासी चाहे जिस धर्म को माननेवाला हो, उन्नति की ऐसी योजना की जानी चाहिए, जिससे सबको लाभ मिले।

प्रश्न : आप अपने जीवन के सम्बन्ध में कृपया थोड़ी जानकारी दीजिए।

उत्तर : राँची से १० मील दूर रामपुर गाँव के सिजुसेरेन टोला में मार्च १९०८ में मेरा जन्म हुआ। मैं हजारीबाग के कालेज से सन् '३१ में ग्रेजुएट हुआ। चार-पाँच साल तक एक मिडिल स्कूल का हेडमास्टर रहा। सन् '३५ में कृषि-विभाग के लिए कम्पटीशन हुआ, जिसमें मैं प्रथम हुआ और उस विभाग में आ गया। तीन साल बाद इसी विभाग के अनुसंधान-विभाग में चला आया। लेकिन सन् १९४४ में मेरे प्रति अन्याय हुआ था, उस कारण से मैं वहाँ से हट गया। उस समय १६ जिलों के लिए जिला कृषि-पदाधिकारी की नियुक्ति हुई थी। मेरा रिकार्ड सबसे अच्छा था और जिस परीक्षा के लिए लोग दो वर्ष के बाद ही बैठने का साहस करते हैं, उसको मैंने छः महीने में ही पूरा कर लिया था, और उस परीक्षा में अच्छे नम्बरों से पास हुआ। फिर भी जब चुनाव का समय आया तो मेरा चुनाव न मेरिट के ख्याल से हो पाया, और न आदिवासी होने के नाते ही। इसलिए खिन्न होकर मैंने नौकरी छोड़ दी। इसके बाद मुझे गोविन्दपुर के राजा के फार्म का एग्रीकल्चर सुपरिण्टेंडेंट बना दिया गया। वहाँ पर एक वर्ष रहा, फिर राजनीति में दाखिल हो गया। झारखंड पार्टी का सक्रिय सदस्य रहा। अपनी किताबें बेचकर और खेती-बारी आदि से जीविका चलाता रहा। सन् १९५२ में एम० एल० ए० हुआ। एक टर्म एम० एल० ए० रहा। उसके बाद मुझे जर्मन चर्च ने आमंत्रित किया कि मैं उनकी कृषि की जिम्मेवारी लूँ। चर्चवालों ने मुझे छोटानागपुर और असम के चर्चों की सम्पत्ति का मैनेजर बना दिया। जिस मिशन में मैं था उस मिशन की खेती की बहुत अच्छी उन्नति हमने एक वर्ष के अन्दर कर ली थी। हमें इस विषय में और अधिक ज्ञान हासिल करने के लिए जापान भेजने का प्रबंध किया गया। वहाँ मुझे बहुत सीखने को मिला। गत '६८ के मई महीने में मुझे श्री भोला पासवान शास्त्री ने एम० एल० सी० नामजद किया।

www.vinoba.in

सामाजिक क्रान्ति और क्रान्ति-पद्धतियाँ

जयप्रकाश नारायण

आज मैं चाहता हूँ कि क्रान्ति के बारे में कुछ चर्चा करूँ। तरुणों में क्रान्तिकारी भावनाएँ होती हैं, ऐसा होना उनके अनुरूप भी है। उन भावनाओं को सही क्रान्ति की तरफ मोड़ देने की आवश्यकता है। आज मैं क्रान्ति के तरीकों पर चर्चा करूँगा। उसके पहले थोड़ा-सा क्रान्ति के बारे में आपसे निवेदन कर दूँ।

विकास और क्रान्ति : प्रचलित भ्रम

बहुत-से लोगों को ऐसा भ्रम होता है कि विकास और क्रान्ति एक ही चीज है। अमेरिका बहुत ही विकसित देश है, सबसे धनी देश है, तो क्या वहाँ क्रान्ति हो चुकी है? वहाँ क्रान्ति की आवश्यकता नहीं है? वहाँ के आप-जैसे शिक्षक, विद्यार्थी और दूसरे चिन्तक अपने समाज को बदलना चाहते हैं, और क्रान्तिकारी रूप से बदलना चाहते हैं। कई प्रकार के विचार वे अपने समाज के सामने रख रहे हैं। अधिकांश विचार गांधीजी के विचारों के अनुरूप हैं।

आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से सोचें तो मेरे सामने जो सामाजिक क्रान्ति का स्वरूप है वह केवल इतना ही नहीं है कि जो मौजूदा समाज है वह कुछ बदल जाय; ऊपर से बदले, उसका रूप थोड़ा बदले, उतना ही नहीं, बल्कि मूल परिवर्तन हो जाय। उसके बाद समाज का नया निर्माण हो। क्रान्तिकारी लोग क्रान्ति इसलिए नहीं करते हैं कि अपने समाज को क्रान्तिकारी तौर पर बदलना चाहते हैं, बल्कि नये समाज का भी निर्माण करना चाहते हैं। तो वह पुराना समाज टूटता है, नया समाज बनता है, जिसको समाजशास्त्री 'सत्ता का ढाँचा' (पावर स्ट्रक्चर) कहते हैं। चाहे वह रचना राजनीतिक सत्ता की हो, चाहे आर्थिक सत्ता की हो, जबतक 'पावर स्ट्रक्चर' में बुनियादी परिवर्तन नहीं होता तबतक क्रान्ति नहीं होती। तो यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि क्रान्ति में इस प्रकार का परिवर्तन हो जाय, और फिर जो नया ढाँचा बने राजनीतिक-आर्थिक सत्ता का, वह जो रचना हुई, वह किस प्रकार की रचना हुई, यह देखना होगा। फिर क्रान्तिकारियों ने जो कहा था उससे वह रचना मिलती है कि नहीं मिलती है। क्रान्ति के तराजू पर उसको, उस घटना को तौलना पड़ेगा, कसौटी पर उसे कसना पड़ेगा और लगता है कि जो कुछ क्रान्तिकारियों ने उद्देश्य रखे थे वे पूरे नहीं हुए, पुराना समाज तो जरूर टूटा, लेकिन नया जो वे चाहते थे, नहीं बना तो वह अधूरी क्रान्ति हो गयी, ऐसा ही मानना होगा।

क्रान्ति की कल्पना

क्रान्ति की अलग-अलग अपनी कल्पना है। आज के समाज में सामान्य कल्पना यह है, और कम-से-कम मेरी कल्पना यह है कि जो यह सत्ता की इमारत है, रचना है, बनाव है, इसकी बुनियाद खत्म की जाय। मूलतः यह सत्ता का ढाँचा (पावर स्ट्रक्चर) बदले। इसकी जगह सत्ता आम लोगों के हाथों में हो और खास करके जो श्रम करनेवाले लोग हैं, उनके हाथों में, चाहे वे शरीर से श्रम करते हों, चाहे बुद्धि से श्रम करते हों। रचना इस प्रकार की हो। अगर आज के समाज में इस प्रकार का क्रान्तिकारी परिवर्तन हो, हर व्यक्ति का स्वातंत्र्य हो और स्वातंत्र्य केवल उसका शारीरिक न हो, बल्कि उसकी बुद्धि भी स्वतंत्र हो; जैसा भी वह सोचे, विचारे, वैसा वह कह सके। उसके साथ और भी बातें होती हैं, वे सब हों। यह सब नहीं हो तो क्रान्ति में कमी रह गयी ऐसा हम मानें। स्वातंत्र्य के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक समता हो। अगर सत्ता वास्तव में उन लोगों के हाथों में हो, जिसे जनता कहते हैं या जो श्रमजीवी हैं, चाहे वे खेतों के हों, कारखाने के हों, दफ्तरों के हों, स्कूलों के हों और शिक्षालयों के हों, तो उसमें समाज का यह वर्गीकरण संभव नहीं है। अगर वर्गीकरण होता है तो कहीं पर सत्ता के प्रवाह में रुकावट आती है। वह सत्ता कहीं ज्यादा इकट्ठा हो जाती है, जिसके कारण से कुछ लोगों का स्थान ऊँचा हो जाता है, अधिकार अधिक हो जाते हैं और हो सकता है कि उनकी आर्थिक स्थिति भी औरों से अधिक ऊँची हो जाय। यह प्रवाह अबाध गति से चलता रहे तो फिर समता होती है।

आर्थिक तथा सामाजिक समता

अपने देश में आर्थिक ही बात तो नहीं है समता की। सामाजिक समता की भी बात है, इस मानी में, कि जाति-प्रथा, स्पृश्य-अस्पृश्य, भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी अपने देश में हैं। अगर क्रान्ति होती है तो उसकी मान्यता होगी कि ये सब बराबर हैं मानव के नाते। रक्त की हैसियत से, इनमें कोई भेद नहीं है। भेद कोई रूप-रंग का हो, आकार-प्रकार का हो, योग्यता जो भगवान के घर से लाये हों उसमें हो सकता है, कोई तीक्ष्ण बुद्धि का हो, कोई मन्द बुद्धि हो, यह सब तो हो सकता है, परन्तु समाज में ऊँच-नीच का या इस प्रकार के और कोई भेद न हों। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि गांधीजी या विनोबाजी भी घुमा-फिराकर भेद का समर्थन करते हैं। उन्होंने भिन्न-भिन्न भाषाओं में वर्ण-व्यवस्था को एक प्रकार से मान्यता दी है। लेकिन साथ-साथ यह हमारी वर्ण-व्यवस्था और आज की जाति-व्यवस्था में जमीन-आसमान का फर्क है। हम यह मानते नहीं हैं कि कोई वर्ग ऊँचा है, कोई नीचा है। हम यह नहीं मानते हैं कि कोई जन्म से नीचा या ऊँचा है। गुण और कर्म से हो सकता है, जैसा गीता ने कहा है या कृष्ण ने कहा है कि मैंने इसकी सृष्टि की है चातुर्वर्ण्य की—गुण कर्म विभागशः। विज्ञान भी मानता है कि कुछ जन्मजात गुण होते हैं लोगों के, जिनमें कुछ भेद हो सकता है। जिनके कारण कोई किसी एक काम के लिए योग्य हो सकता है, कोई दूसरे काम के

लिए योग्य हो सकता है, कोई तीसरे काम के लिए योग्य हो सकता है। ऐसा देखा जाता है कि कोई बचपन से ही अच्छी कविता करता है, बहुत अच्छी चित्रकारी करने लगता है या मिट्टी से ही कुछ बनाने लगता है। लगता है कि कुछ कलात्मक गुण हैं, जो शायद जन्मजात हैं। इसलिए यह भेद ध्यान में रखना चाहिए और गांधीजी या विनोबाजी का नाम लेकर यह कोई कहे कि यह तो इन्हीं लोगों ने, महात्माओं ने, इस प्रथा का समर्थन किया है तो उनके साथ न्याय नहीं होगा। समता की बात हो तो उसको केवल आर्थिक और राजनीतिक ही नहीं, सामाजिक क्षेत्र तक जाना पड़ेगा, सम्प्रदायों के क्षेत्र में जाना पड़ेगा और सबकी समता को मान्य करना पड़ेगा। इस प्रकार से जो सामाजिक क्रान्ति के—सामाजिक में आर्थिक, राजनीतिक और सब कुछ आता है, संस्कृति भी आयेगी, उसमें शिक्षा भी आयेगी —तरीके हैं उनका हम विचार करें।

क्रान्ति के तीन मार्ग :

कानून, कत्ल, करुणा

हम लोग अपने सर्वोदय-आन्दोलन में ऐसा कहते रहे हैं कि क्रान्ति के तीन तरीके हैं : कानून, कत्ल और करुणा। कानून से मतलब आप समझते ही हैं, यानी लोकतांत्रिक तरीके से। करुणा का तरीका भी लोकतांत्रिक है, बल्कि शुद्ध लोकतांत्रिक वही है, क्योंकि वह लोगों को समझाकर कुछ कराने का है। यह भेद आप अपने ध्यान में रख लीजिएगा, बहुत लोग इसमें भूल कर देते हैं। गांधीजी तो कहते थे कि हमारा जो तरीका है अहिंसा का, वह सौ टका लोकतांत्रिक है। कानून का, राज्य की तरफ से, विधानसभाओं, लोकसभाओं आदि की तरफ से कानून बनाकर समाज को बदला जाय, एक तरीका यह, दूसरा हिंसा का तरीका, वह कत्ल का और तीसरा करुणा का या प्रेम का।

कानून से सामाजिक क्रान्ति असम्भव

मैं धीरे-धीरे इस नतीजे पर पहुँचता जा रहा हूँ, अभी तक उस नतीजे पर पहुँच गया हूँ ऐसा नहीं कह रहा हूँ, लेकिन इस नतीजे के करीब आ गया हूँ कि यह राज्य के जरिए—राज्य में ये तीनों बातें हैं : कानून, प्रशासन, और न्याय (जस्टिस)। तीनों को मिलाकर 'पार्लियामेंटरी सिस्टम' या यह जो वैधानिक प्रथा है चलती है, धारासभा में कानून बनता है, उसके मुताबिक प्रशासन कानून को जमीन पर उतारने का प्रयत्न करता है और जो कानून बना है उसका कोई उल्लंघन करता है तो निष्पक्ष भाव से न्यायाधीश लोग न्याय देते हैं—ये तीन अंग हुए इस प्रथा के। तो सामाजिक क्रांति उस माने में, जिस माने में मैंने पेश किया है कानून से नहीं होती। कुछ समाज-सुधार हो, गरीबों के लिए कुछ उपाय किये जायँ, उनको ऊपर उठाया जाय, राष्ट्रीयकरण किया जाय अथवा कल्याणकारी राज्य बनाया जाय, ये सब संभव तो है, लेकिन इन सबके द्वारा कोई सामाजिक क्रान्ति हुई ऐसा अभी तक तो नहीं हुआ है। कानून से समाज को बदलने का प्रयत्न दुनिया में समाजवादियों ने कई जगह किया है। युरोप का स्वीडेन देश है, जहाँ लोकतांत्रिक समाजवादियों का राज्य अधिक काल तक रहा है। लेकिन इतने दिनों तक उनका राज्य रहा, उसका बहुत कुछ विकास हुआ। अमेरिका के बाद शायद स्वीडेन दुनिया का सबसे बड़ा धनी देश होगा, जहाँ जीवन का स्तर सबसे ऊँचा है, अमेरिका के बाद। वहाँ आमदनी बहुत ऊँची है। मजदूरों की संस्थाएँ, संगठन भी बहुत ताकतवर हैं। व्यापार, उद्योग के बहुत से क्षेत्रों का राष्ट्रीयकरण भी हुआ है। सहयोग-समितियाँ और सहयोग-आन्दोलन का बहुत विकास वहाँ हुआ है। यह सब कुछ हुआ है, फिर भी बुनियादी तौर पर स्वीडेन का समाज पूंजीवादी समाज है, पूंजीवादी मूल्य हैं और पूंजीवादी रचना है। विश्लेषण करने से ऐसा नहीं लगता है कि वह पावर स्ट्रक्चर, एकोनामिक स्ट्रक्चर, पोलिटिकल पावर का सारा स्ट्रक्चर, इस प्रकार से बदला है कि वहाँ राज्य साधारण प्रजा के हाथों में है और बाकी जो मैं आपसे कह गया वह सब हैं!

लोक-सत्ता यानी लोक-निर्णय

यहाँ भारत में भी राज्य प्रजा के हाथ में है। सन् '६७ का चुनाव हुआ, सन् '६९ का चुनाव हुआ। तो प्रजा के हाथों में राज्य होने का यह मतलब तो है नहीं कि प्रजा को, जनता को समय-समय पर यह मौका हो कि मतदान करे और मतदान के द्वारा अपनी पसन्द की हुकूमत कायम करे। मान लीजिए, सारी चुनाव-पद्धति में जो बहुत-सारे दोष हैं, दूर भी कर दिये जायँ और बहुत शुद्ध रीति से चुनाव हो, फिर भी जनता के हाथों में राज्य है, यह तो नहीं कहा जा सकता है! जनता के द्वारा जो चुने हुए प्रतिनिधि हैं, उनके हाथों में राज्य हो सकता है। तो प्रतिनिधिक राज्य के लिए, प्रातिनिधिक शासन के लिए अगर क्रान्ति हुई तो कह सकते हैं कि वह क्रान्ति सफल हुई, लेकिन मेरी कल्पना सामाजिक क्रान्ति की वह नहीं है। मेरी कल्पना यह है जो सभी क्रान्तिकारियों ने कहा। लेनिन ने कहा : "आल पावर टु दी सोवियत"—सोवियत यानी पंचायत, सारी सत्ता सोवियत की। मजदूरों की सोवियत, मजदूरों की परिषदें। अपनी संस्थाएँ सिपाहियों की और किसानों की। सारी सत्ता इनके हाथों में जाय, तो ऐसा कुछ तो दीखता नहीं है कि स्वीडेन में ऐसा है, और वे अपना राज चला रहे हैं। जनता राज्य चलाये उसका मतलब कि जनता को यह मौका होना चाहिए और इस प्रकार का तंत्र होना चाहिए कि जो निर्णय लेने हों वह जनता को लेने हैं। आज तो जनता ने एक ही निर्णय लिया है, जो लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ हैं उनमें, कि आम चुनाव के समय जनता का यह निर्णय है कि अमुक पार्टी को या अमुक लोगों को वोट दे देना, बाकी सब निर्णय उनके हाथों में है जिनको वोट दे दिया। इसका भी आप विश्लेषण करें तो जिन लोगों को वोट दे दिया उसमें अधिकांश लोग ऐसे हैं जो हाथ उठानेवाले हैं। इस तरह जो प्रातिनिधिक व्यवस्था है उसमें भी मुट्ठी भर लोगों के पास सत्ता रहती है और उन मुट्ठी भर लोगों में भी हो सकता है कि एक व्यक्ति के हाथों में सत्ता हो। तो लोकतंत्र के नाम पर इस प्रकार की रचना खड़ी हो जाती है।

इसमें यह प्रश्न उठता है कि क्या यह

www.vinoba.in

सम्भव है कि जनता के हाथों में सत्ता हो, निर्णय जनता करे ? ऐसी व्यवस्था बन सकती है क्या ? और खासकर आजकल के युग में, जिसमें विज्ञान का, यंत्र का, यंत्र-कला का, तकनीक का, शीघ्रता और तीव्रता से विकास हो रहा है, यह संभव है क्या ? यह विषय सोचने का है । अपने देश में अधिकांश लोग हैं, जो कहेंगे कि यह संभव नहीं है, ये बातें पुरानी हो चुकीं । जब समाज कुछ ज्यादा सादा था उस जमाने में यह संभव था कि गाँव में गाँव का राज चलता था और समाज में स्वायत्तता थी, लेकिन यह आज के समाज में संभव नहीं है ।'

विज्ञान और विकेन्द्रीकरण

मैं इसको नहीं मानता हूँ कि विज्ञान के युग में इसका कोई विरोध है, टेक्नोलॉजी की वजह से कोई रुकावट है । जनता के पास सत्ता होगी तो यही न होगा कि विकेन्द्रीकरण होगा आर्थिक, राजनीतिक, इत्यादि । बात यह हुई है कि यंत्रों का जो विकास हुआ है, और उनका जो उपयोग हुआ है, वह दो उद्देश्यों से हुआ है, और दो प्रकार के नेतृत्व से हुआ है—नेतृत्व पूंजीवाद का और उद्देश्य अधिक-से-अधिक मुनाफा का । पूंजीवाद के सामने जनता की सत्ता हो, मजदूर की सत्ता हो, कारखाना मजदूर चलायें ऐसा कोई उद्देश्य तो है नहीं; उसका उद्देश्य मुनाफा है । अतः उसने यंत्र-कला के विकास को ऐसी दिशा दी कि जिससे अधिक-से-अधिक मुनाफा हो सके, वे प्रतिद्वन्द्विता (कम्पीटीशन) में जीत सकें, दुनिया के बाजार में सस्ते-से-सस्ता बेच सकें, बाजार अपने काबू में कर सकें, वगैरह-वगैरह । पूंजीवाद का नेतृत्व और मुनाफा का उद्देश्य । तो यंत्र-कला का जो विकास हुआ उसमें यंत्र-कला का दोष नहीं है, वैज्ञानिकों का दोष नहीं है । वही वैज्ञानिक, वही इंजीनियर, वही दूसरे प्रकार की मशीन बना सकते हैं, जिससे दूसरे प्रकार के सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हो सके । दूसरी जो दिशा और दूसरा जो नेतृत्व है, वह है राज्य का, उद्देश्य है सत्ता (पावर) का । केवल सत्ता ही नहीं, बल्कि अधिक-से-अधिक अधिकार (पावर) । उन्होंने सारी टेक्नोलॉजी के विकास का रास्ता दिया पूंजीवादी देशों में, समाजवादी देशों में, और साम्यवादी देशों में भी । अब अगर इनको भी पावर चाहिए कि दुनिया में अधिक-से-अधिक उनको शक्ति हो, शक्ति का जो मुकाबिला है उसमें वे आगे जा सकें, तो यह आवश्यक हो जाता है कि यंत्रों का और विज्ञान का विकास उस दिशा में हो, फिर ऐटम बम बनें, हाईड्रोजन बम बनें । पृथ्वी पर लड़ाई के उपाय किये जायं, आसमान में भी किये जायें । यह सारा अन्तरिक्ष (स्पेस) का विज्ञान विकसित हो रहा है, कोई मानव-हित के लिए हो रहा है या विज्ञान की खोज हो रही है, ऐसा नहीं है । दोनों 'सुपर पावर'—अमेरिका और रूस को आपस में डर है और वे आपस में बात कर रहे हैं कि कम-से-कम अन्तरीक्ष का जो भी सामरिक प्रयोग करना है वह दोनों मिलकर करें ।

पश्चिम के तरुणों का विद्रोह

अब मान लीजिए राज्य का कारखाना हो, तो क्या होगा ? बड़े-से-बड़े कारखाने बने, इनको भी दुनिया के बाजारों में दूसरों के साथ मुकाबिला करना है । जहाँ लोकतांत्रिक ढंग से समाज को बदलने का प्रयत्न हो रहा है वहाँ मिश्रित अर्थरचना है—एक तरफ पब्लिक सेक्टर है दूसरी तरफ प्राइवेट सेक्टर । अब दोनों की प्रतिद्वन्द्विता (कम्पीटीशन) होगी, दोनों एक-दूसरे पर असर डालेंगे । फिर वही पुरानी दिशा होगी । इन कारणों से अति संगठित और अति केन्द्रित समाज बनता जा रहा है । इसके विरोध में यूरोप, अमेरिका के तरुणों ने यह आवाज उठायी । फ्रांस की क्रांति हुई पिछली सन् १९६८ की, असफल क्रांति हुई, लेकिन वह एक क्रांतिकारी घटना थी, केवल विद्यार्थियों का विद्रोह ही नहीं था । इसमें मुझे कोई संदेह नहीं । उसमें कुछ तरुण ऐसे थे जो किसी-न-किसी कोल्हू के बैल थे, किसी-न-किसी दल से उनका सम्बन्ध था । उनकी दृष्टि उतनी ही दूर जाती थी जितना दलवाले कहते थे । अधिकांश जो विद्यार्थी थे और शिक्षक थे उन्होंने अपरम्परागत (नान ट्रेडिशनल) बातें कीं—न समाजवाद की ओर न साम्यवाद की । अगर समाजवाद की बात की तो दूसरे प्रकार की की ओर उन्होंने कहा कि हम विकेन्द्रीकरण चाहते हैं ।

यूरोप में, कम-से-कम पश्चिम और मध्य यूरोप में दो ही देश हैं पश्चिम जर्मनी और फ्रांस, जो सबसे ज्यादा तकनीकी दृष्टि से विकसित हैं । अब इतना तकनीकी विकास हो जाने के बाद वे कह रहे हैं कि विकेन्द्रीकरण हो । और, वे विश्वविद्यालय के विद्यार्थी हैं और शिक्षक हैं; ऐसा नहीं है कि उनको कुछ पता ही नहीं है कि वे क्या कह रहे हैं और क्या स्थिति है । जो स्थिति है उसीके खिलाफ वे विद्रोह कर रहे हैं । यह समाज जगन्नाथ का ऐसा रथ हो गया है कि हम इसके नीचे पिस रहे हैं, हमारे दम घुट रहे हैं । हमें नहीं चाहिए यह प्रातिनिधिक व्यवस्था—ट्रेड यूनियन की हो, चाहे चैम्बर आफ डिपुटीज की यानी उनके पार्लियामेंट की व्यवस्था हो । किसी प्रकार की प्रातिनिधिक व्यवस्था में हमारा विश्वास नहीं ।

सत्ता श्रम-स्थल पर

हम क्या चाहते हैं ? प्रत्यक्ष लोकतंत्र : 'डाइरेक्ट डिमाक्रेसी', ये उनके शब्द हैं । गांधीजी के शब्द मैं उन विद्यार्थियों-शिक्षकों के मुँह में नहीं डाल रहा हूँ । हम क्या चाहते हैं ? 'पावर आफ दी वर्क प्लेस ।' सत्ता वहाँ हो जहाँ श्रम का, काम का स्थान है । उन्होंने उसका कुछ विस्तार ही किया । उद्योग में अधिकार (पावर) कारखाने में हो, विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों के हाथों में हो, शिक्षकों के हाथों में हो । सत्ता उनके हाथों में नहीं हो, जिनके हाथों में एजूकेशन मिनिस्टरी है, जो एजूकेशन ब्यूरोक्रेट्स हैं । इस ब्यूरोक्रेसी में हमारा विश्वास नहीं है । प्रत्यक्ष जो लगे हुए हैं शिक्षा के काम में, उनमें से भी वे जोर देते हैं विद्यार्थियों के ऊपर, क्योंकि सब शिक्षकों पर उनका विश्वास नहीं है । वे मानते हैं कि इस समाज के वे एक तरह से दलाल हो चुके हैं । वे शायद हमारी क्रांति के रास्ते में, और जिस प्रकार हम सत्ता का उपयोग करना चाहते हैं, उसमें रुकावट डालें । देहातों में सत्ता किसके

पास ? किसानों के पास। हालांकि उन्होंने यह भी कहा है कि 'जो किसान है, जमीन का मालिक है, फ्रांस में वह सन् १७८९ की क्रांति के बाद हुआ जिससे सामन्तवाद मिटा, तो इसलिए उसका मानस कुछ पेटी बुर्जुवा हो सकता है। किसानों की दृष्टि थोड़ी पूंजीवादी हो सकती है। फिर भी सत्ता उनके पास हो जो देहातों में, खेतों में काम करनेवाले हैं—चाहे वे किसान हों, मजदूर हों, जमीन के मालिक ही क्यों न हों।' अब ये सब बातें वहां वे कह रहे हैं। और मैं देखता हूं अमेरिका का न्यू लेफ्ट, इंग्लैंड का न्यू लेफ्ट, फ्रांस का न्यू लेफ्ट, नये वामपंथ के लोग किस प्रकार का विचार रख रहे हैं। मैंने इसलिए इसका जिक्र किया कि हमारे जो पढ़े-लिखे लोग हैं उन्होंने सीख लिया है यह कहना कि गांधीजी का यह सब क्या है करघा-चरखा ! यह सब देश को दकियानूसी और निकम्मा बनाना है। गांधीजी ने तो कभी नहीं कहा था कि यही चरखा, यही करघा, यही बैलगाड़ी हमें रखनी है। यांत्रिक विकास के विरुद्ध तो वे थे ही नहीं। लेकिन यंत्र ऐसा हो, यांत्रिक विकास ऐसा हो जिससे मानवीय उद्देश्यों की पूर्ति हो। यह सारा जो संगठन है पश्चिम का, रूस का, चीन का, वह तो हो ही रहा है। देखें क्या होता है। मेरा ख्याल है कि माओ कुछ बदलने की कोशिश कर रहे हैं कि समाज ब्यूरोक्रेसी के हाथ में न जाय। शायद यही प्रयत्न लेनिन भी करते। अब क्या होगा मैं नहीं कह सकता, लेकिन रूस में जो ढांचा है वह ऐसा है जिसमें ऊपर वे ही सब कुछ हैं। सत्ता ऊपर के कुछ हाथों में है, इसलिए उसमें परिवर्तन करना है। इनका आर्थिक-राजनैतिक जो आकार है, चाहे रूस हो, अमेरिका हो, या यूरोप के दूसरे देशों का हो; कुछ स्वीटजरलैण्ड भिन्न है, स्कैण्डिनेविया थोड़ा भिन्न होगा, छोटे देश होने के कारण। इनके जो संस्थान बने हुए हैं चाहे वे शिक्षा-संस्थान हों, चाहे उद्योग के संस्थान हों, चाहे सरकार के हों, इन लोगों का कहना है कि उनका आकार दैत्याकार हो गया है, राक्षसी आकार हो गया है। इसका आकार मानवीय करने की जरूरत है। गांधीजी ने बराबर यही कहा कि मैं यह चाहता हूं कि मशीन का मालिक मनुष्य है, मनुष्य का मालिक मशीन न बने। आज पाश्चात्य सभ्यता में मशीन मनुष्य का मालिक है, बहुत हद तक रूस में भी, कुछ उसमें फर्क है, फिर भी बहुत हद तक वही है।

यह मैंने आपके सामने इसलिए पेश किया कि इस विकेन्द्रीकरण को इतनी आसानी से दूर कर देना यह कहकर कि यह आज के जमाने में फिट नहीं करता है, नासमझी की बात है, कोई गहरी बात नहीं है। तो आपसे यह निवेदन कर रहा था कि कानून के जरिये मैं नहीं देखता हूं कि दुनिया के किसी भी देश में जहां लोकतांत्रिक समाजवादी या लोकतांत्रिक परिवर्तनवादी हों, उन्होंने कोई समाज में आमूल परिवर्तन किया हो, यानी कोई सामाजिक क्रान्ति की हो। इंग्लैण्ड में भी लेबर पार्टी की हुकूमत है। कई बार लेबर पार्टी हुकूमत में आयी, राष्ट्रीयकरण बहुत किया उन्होंने, फिर भी वहां नये मानवीय मूल्य स्थापित नहीं हुए, न नये सम्बन्ध स्थापित हुए। सम्बन्ध यानी जो काम करनेवाले हैं एम्प्लायर और एम्प्लाई, चाहे वह स्टेट ही एम्प्लायर हो लेकिन आज उसी प्रकार का सम्बन्ध ज्यों-का-त्यों कायम है। कोई नयी स्पिरिट, कोई नयी दृष्टि नहीं आयी कि हम दोनों पक्षों के लोग मिलकर समाज की कोई सर्विस कर रहे हैं, समाज की कोई सेवा कर रहे हैं। दोनों के अलग-अलग स्वार्थ हैं। अपने देश में भी राष्ट्रीयकरण है। कैपिटलिस्ट ब्यूरोक्रेसी को छोड़कर स्टेट की ब्यूरोक्रेसी हो गयी है, और तो कोई फर्क है नहीं। यहां मुनाफा होगा तो जायगा राज्य के खजाने में, वहां शेयरहोल्डर्स को बंटेगा। इसमें कोई फर्क है ? कोई फर्क नहीं है।

(अगले अंक में समाप्य)

लोकमन : बदलते जीवन-संदर्भ की जीवंत कहानी

महाभारत की कथा है कि कर्ण के कवच और कुण्डल जन्म से ही उसके शरीर के अंग-स्वरूप थे, उसी तरह इस सृष्टि के सभी प्राणियों में सत्य, प्रेम, करुणा स्वभावजन्य गुण हैं ; परन्तु परिस्थिति और वातावरण के कारण वे दब जाते हैं; और कभी-कभी किसी साधु पुरुष की वाणी से अथवा अपने सत्कर्मों से वातावरण बदलते ही फिर उजागर हो उठते हैं। आदि कवि वाल्मीकि उसके उदाहरण हैं। बौद्ध युग में अंगुलिमाल के जीवन में वह घटित हुआ और आज उसका उदाहरण देखना हो तो लोकमन के जीवन में देखिए। जो बचपन में पुजारी, तरुणाई में १५ साल तक दस्यु मानसिंह का दाहिना हाथ और फिर विनोबा की वाणी तथा मेजर जनरल यदुनाथ सिंह के प्रयत्नों से पटरी बदलकर जंगल से जेल खुशी-खुशी गया ; वहाँ भी आठ साल रहकर अब इस इलाके का एक सद्गृहस्थ बन गया है।

एक ७० वर्ष के बूढ़े दादा हरचरन ने २५ साल पहले उसे देखा था एक तरुण ब्राह्मण-सुत के रूप में। उस समय उसे लोग विद्याशंकर कहते थे। उसके पिता गांव के जाने-माने एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण थे और इन बूढ़े दादा के दोस्त भी थे। पर एक दिन ऐसा हुआ कि वह १५ साल का लम्बे कद का गठीले बदनवाला गोरा-सा छरहरा नन्हा पुजारी आंख से ओझल हो गया और तब से ही बूढ़े दादा की आंखें उसे देखने को तरस रही थीं। उस दिन जब मेरे साथ भिण्ड में उन्होंने लोकमन को देखा तो उनकी आंखें सिहा उठीं, गला भर आया, कहने लगे, "बड़े दुःख पाये, लेकिन चलो अब ठीक है।"

मानसिंह का लोकमन

वहां एक पुलिस-कर्मचारी थे। उन्होंने पूछा, "क्यों, कैसा हाल है ?" फिर कहा, "आप लोग जानते हैं, पुलिस-रिकार्ड में चीफ सेक्रेटरी, मध्यप्रदेश शासन की रिपोर्ट अगर देखी जाय तो आप पायेंगे कि उसमें लिखा है कि इनमें बड़ी ही संगठन की शक्ति और क्षमता है।" लोकमन सुनकर हँसने लगे और बोले, "मैं नहीं जानता कि सबके मनों

www.vinoba.in

को रखनेवाली ऐसी कौनसी बात मुझमें है ? लोक-संगठन की मुझमें क्या क्षमता है कि ठाकुर मानसिंह ने मेरा नाम लोकमन रख दिया। यह नाम मेरे मां-बाप का दिया हुआ जन्म का नहीं है, बल्कि ठाकुर मानसिंह का रखा हुआ है।"

"उन्होंने यह नाम क्यों रखा ?" "वह सब मत पूछो। वह किताब तो मैंने फाड़ डाली। बस, इतना ही काफी है कि जंगली जानवरों की जिन्दगानी थोड़े दिन की होती है, पर मेरी यह जिन्दगी १५ साल चली। जबतक ठाकुर मानसिंह रहे तबतक उनके हाथ के नीचे और उनके बाद रूपा के। जिस दिन रूपा को गोली लगी, बस उस दिन से सीधे में आग-सी धधक उठी। उसे हम लोगों ने लाख समझाया कि देख, पुलिसवाले किसीके सगे नहीं होते। ये लोग कांटे-से-कांटा निकालते हैं। उसने नगरा के उस पुलिस-आफिसर के साथ उठना-बैठना, खाना-पीना और रसोई शुरू की, तो एक दिन उसकी ही गोली का निशाना बना और उसके बाद ७ महीने गैंग-लीडरी मेरे जिम्मे पड़ी।"—कहकर लोकमन कुछ गम्भीर हो गये।

लोकमन का फरिश्ता

"केवल सात महीने ही क्यों ?"

"उसके बाद तो जिन्दगी की राह ही बदल गयी। क्या यह भी आपको बताना पड़ेगा ?" लोकमन ने उलटे मुझसे ही प्रश्न किया।

"कोई कुछ भी कहे, किसीने भी भेजा हो, कैसे भी आया हो, पर एक फरिश्ता आया। खुद अपने पैरों चलकर बेहड़ में पहुंचा। हमें प्रेम से समझाया कि यह गलत रास्ते का जीवन है। पहले-पहल तो ऐसा लगा, जैसे किसी काने आदमी को कोई काना कहकर चिढ़ा रहा हो। पर न जाने, उस मेजर जनरल यदुनाथ सिंह की वाणी में क्या मिठास थी ! उनकी बोली में क्या सुगन्ध थी, कि उनकी बातें दिल में बैठने लगीं। उसके पहले तो जो भी आया था वह गाली-गलौज और डण्डे की बात करनेवाला आया, सतानेवाला आया, पर यह जनरल साहब पहले आदमी थे जिन्होंने कहा कि 'अपने पापों का प्रायश्चित कर लो।' जब वे बात करते थे तो ऐसा लगता था कि जैसे उसी समय हम आत्म-समर्पण कर रहे हों। वह चले जाते तो शक होता था कि सरकारी आदमी हैं, कहीं धोखा न हो ! लेकिन उनसे फिर मिलने के लिए जो जगह बताते उस जगह पर पहुँचने के लिए मन बेचैन हो उठता। जब उनसे मिलते तो मन निर्मल हो जाता, फिर उनकी बातों से दिल भर उठता कि यह आदमी धोखा नहीं दे सकता। यह सिलसिला काफी दिनों तक चलता रहा और उनकी प्रेरणा से सन् १९६० की १९ मई को आखिर मैंने अपने को कानून के हवाले कर दिया। अपने को ही नहीं, अपने २० साथियों को भी सन्त विनोबा के सामने अपने हथियारों सहित समर्पित कर दिया। १७ हजार रुपये कीमत की टेलिस्कोपिक रायफल कंधे से उतार दी, उस वक्त तो ऐसा लगा कि जैसे साँप अपनी मणि छोड़ रहा हो ! लेकिन फिर खुद ही हँसी आयी कि अब साँप साँप कहाँ रहा ? वह तो जनरल यदुनाथ सिंह साहब की बीन में बँध गया।" लोकमन कुछ क्षणों के लिए बीती बातों की याद में घिर-से गये।

तन कैदी : मन मुक्त

"जंगल से जेल जाते कैसा लगा ?"

"लगने को क्या, पहले-पहल तो हथियारोंवाला मुकदमा चला, जिसमें एक अकेले विद्याराम को छोड़कर हम सबने तुरन्त अपना गुनाह कबूल कर लिया, अपने हथियार पहिचान लिये और कहा कि ये सब बिना लायसेन्स के हथियार हैं, और उस 'आर्म्स एक्ट' के मुकदमे में, जो अधिक-से-अधिक दो साल की सजा हो सकती थी, वह हम सबको हुई। उसके बाद फिर और भी कई मुकदमे चले, जिनकी अपनी भली-बुरी बातें हैं। कई मुकदमे चले, किसीमें छूटे, किसीमें सजा हुई। जेल में रामायण का पाठ, वाली-बाल खेलना, सुबह-शाम भोजन बनाना, बर्तन साफ करना, यही सब सालों तक चला। कभी रामायण की पंक्तियाँ जब आँखों के सामने आतीं—"समझे नहीं तब बालापन, तब हम रहे अचेत"—तब आँखें भर आतीं। कभी मन सहज होता, कभी शांत रहता, कभी-कभी उत्तेजित भी हो उठता। भिण्ड जेल का एक सिपाही, जो डाकू-जीवन में तो पुजारी-पुजारी कहकर पैर छूता था, वही जेल में गाली देने लगा तो हाथ उसके गाल तक उठ गया। जोर का चाँटा पड़ा। पूछा गया, तो कह भी दिया। जेल-अधिकारियों ने किस्से को रफे-दफे किया, लेकिन मन नहीं माना। दरख्वास्त दी कि गलती हुई है सजा मिलनी चाहिए और कह-सुनकर दो माह की सजा बढ़वा ली। इसी तरह एक-एक कर दिन गुजरते रहे। परसौना-काण्ड में जन्म-कैद की सजा हुई थी, इसलिए अभी और कई सालों तक के लिए बेफिक्र थे कि जेल में ही रहना है। बीच में कुछ ऐसी सरकारी मेहरबानी हुई कि रिश्तेदारों की १०-१० हजार की दो जमानतों पर 'पैरोल' पर छूटने की थोड़ी-सी छुट्टी मिली और जेल के बाहर का जीवन देखा। सबसे मिल-जुलकर कुछ दिन घर रहकर फिर लौट आये और एक दिन १७ अप्रैल १९६८ को तो मध्य-प्रदेश के राज्यपाल और सरकार ने बिलकुल माफ कर दिया, क्षमा-दान दे दिया।" कथा का अन्तिम अध्याय समाप्त कर लोकमन चुप हो गये।

तन मुक्त : मन कैदी

"जेल से छूटे भी तो अब सवा साल बीत गया ?"

"हाँ बीत तो गया, पर यह घर-गृहस्थी भी जेल ही है, जब जेल में थे तो ज्यादा सुख था, कोई फिक्र नहीं, 'मनुआ बेपरवाह, खाये-पिये भजन किया।' वालीबाल खेले और सो रहे। अब पत्नी की फिक्र है, जिसकी अध्यापिका की नौकरी छूट गयी है, लड़के-बहू की फिक्र है, लड़के का नाम तो है सन्तोष, पर उससे अपने को तो सन्तोष नहीं है। कोई खास पढ़-लिख नहीं सका, कोई धंधा रोजगार नहीं सीख सका। अब सब कुछ अपने ही ऊपर है। संतोष से छोटे और भी भाई-बहन हैं, दिन-रात इनकी देखभाल करने की फिक्र है। कुछ जमीन दतावली में है, कुछ

महुवा गाँव में है, जहाँ बड़े भाई रहते हैं। कुछ श्योपुर में भूदान की जमीन मिली है। कई घरेलू समस्याएँ हैं। मेहमान बहुत आते-जाते रहते हैं। अब कोई दरवाजे पर आये तो उसकी खातिर करना गृहस्थ का धर्म हो जाता है। वैसे कोई बिगाड़ की बात किसीसे नहीं है, लेकिन जिनके कब्जे से अपनी जमीन हासिल की है, उनसे कुछ थोड़ी-बहुत खटपट तो रहती ही है, पर फिर भी झगड़े-वाले गाँव में निर्भय चले जाते हैं। लोगबाग प्रेम में सुन लेते हैं। अभी गवर्नर साहब भिण्ड आये थे, उनसे भी हम मिले। हाथ मिलाया। हम तो खड़े रहे, लेकिन उन्होंने बड़े आदर से पास में बैठाया और कहने लगे, 'तुम भी डाकू, हम भी डाकू, हम पोलिटीकल डाकू हैं।' बड़े प्रसन्न होकर मिले। हमें जनरल साहब की याद आ गयी। वह भी कभी-कभी ऐसे ही प्रेम से बोला करते थे। गवरनर साहब के घर में जो थीं, वे तो इतने प्रेम से बोलीं कि कुछ हम कह नहीं सकते। हमारी पत्नी और बच्चों को बुलवाया, उन्हें भी पास बैठाकर बातें कीं, और खबर भिजवाकर, ढुंढ़वाकर एक फोटोग्राफर को बुलवाया और हमारे साथ बैठकर फोटो खिचवायीं। जहाँ लोग हमारी छाया से भी डरते थे, वहीं भिंड में हमारे फोटो खिच रहे थे। यह सब जनरल साहब और विनोबाजी का प्रताप है, जिन्होंने हमारे मन में एक अच्छी भावना भरी और उससे इतनी बड़ी संभावना देखने को मिली। भगवान की कृपा है! एक भजन गाया करते थे, 'भगवन् लीला तेरी अजब निराली है' वह जीवन में आँखों देख लिया।"

लोकमन के जीवन के कुछ क्षणों का मैं साक्षी रहा हूँ। उनके साथ बैठा-उठा हूँ, मिला हूँ और आज एक नेक गृहस्थ के जीवन में देखता हूँ, तो गोस्वामी तुलसीदास की पंक्तियाँ रह-रहकर याद आती हैं :

"सुमति-कुमति सबके उरमाहीं,
कर विचार देखऊ मनमाहीं।"

—गुरुशरण

संगम तट से

बैंकों का राष्ट्रीयकरण

शनिवार, १९ जुलाई की शाम को भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घोषणा की। वह यह थी कि देश के चौदह प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया जा रहा है, ताकि देश समाजवाद के अपने घोषित लक्ष्य की ओर बढ़ सके और अर्थनीति के ऊँचे शिखरों पर सरकार का नियंत्रण रह सके। अपने इस क्रान्तिकारी, साहसपूर्ण और दूरदर्शितायुक्त कदम द्वारा श्रीमती इन्दिरा गांधी और भारत सरकार ने देश के मूक दरिद्रनारायण के प्रति अपने प्रथम कर्तव्य का पालन कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया है। इसके लिये हार्दिक बधाई और अभिनन्दन!

सच तो यह है कि १५ अगस्त १९४७ को लाल किले पर तिरंगा झंडा फहराने के बाद, सबसे पहले यही काम होना चाहिए था और तभी देश की आर्थिक लगामें सरकार के हाथ में आ पातीं और यहाँ का संयोजन तथा विकास सर्वजनहिताय होता। लेकिन अनेक कारणों से उसमें देर होती चली गयी और अब लगभग बाईस बरस के बाद यह कार्य सम्पन्न हो सका। खैर, देर आयद्, दुरुस्त आयद्!

बैंकों की स्थिति

इन चौदह बैंकों के पास सत्ताईस अरब रुपये से ज्यादा जमा है और वे हर तरह से सम्पन्न हैं। इनकी आर्थिक स्थिति की जानकारी निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट होती है :—

सब आँकड़े करोड़ रु० में

क्रम	बैंकों का नाम	कुल जमा पूँजी	कुल पेशगी	अपनी पूँजी
१.	सेन्ट्रल बैंक	४३३.२७	२९६.२७	११.८८
२.	बैंक आफ इण्डिया	३९४.९७	२५३.०५	१०.४९
३.	पंजाब नेशनल बैंक	३५५.९९	२०९.४०	६.८३
४.	बैंक आफ बड़ौदा	३१३.८०	१९६.१४	५.७६
५.	यूनाईटेड कमर्शियल	२४०.५८	१४४.००	६.९७
६.	कैनेडा बैंक	१४६.४४	९६.७२	३.२१
७.	यूनाईटेड बैंक	१४३.८९	९९.६१	४.०४
८.	देना बैंक	१२१.८८	७४.०८	२.९३
९.	यूनियन बैंक	११५.२२	६८.६३	२.५६
१०.	इलाहाबाद बैंक	११२.७२	६९.९३	२.५४
११.	सिण्डीकेट बैंक	११२.१९	७०.६१	२.६६
१२.	इण्डियन ओवरसीज	९३.२२	५८.३२	२.१५
१३.	इण्डियन बैंक	८४.५९	५७.१६	२.०६
१४.	बैंक आफ महाराष्ट्र	७३.०२	४९.७४	२.०२
	कुल :	२,७४१.७५	१,७४३.६६	६६.१०

इन १४ के अलावा देश में छोटे-मोटे ४४ निजी बैंक और हैं। तुलनात्मक दृष्टि से उनकी स्थिति इस प्रकार है :

नाम	जमा पूँजी	प्रतिशत	पेशगी	प्रतिशत
१४ बड़े बैंक	२,७४१	७२	१,७४३	६५
४४ छोटे बैंक	१,०५१	२८	९८०	३५
कुल :	३,७९२	१००	२,७२३	१००

इससे पता चलता है कि कुल ५८ बैंकों की जमा पूंजी में लगभग तीन-चौथाई १४ बड़े बैंकों के पास है और पेशगी में से लगभग दो-तिहाई। इसलिए सरकार ने इन ४४ छोटे बैंकों को छोड़ दिया। विदेशी बैंकों को भी छोड़ दिया है। उनमें दो नेशनल एण्ड ग्रिण्डलेज बैंक और फर्स्ट सिटी बैंक आफ न्यूयार्क काफी बड़े हैं। लेकिन उनको छोड़ने के दो कारण बताये गये हैं—एक तो यह कि इनके प्रधान कार्यालय लन्दन और न्यूयार्क में, यानी भारत की सीमा के बाहर हैं और दूसरे, भारत-सरकार विदेशी पूंजीपतियों को डराना या भगाना नहीं चाहती।

www.vinoba.in

सरकारी विज्ञप्ति में बताया गया है कि सरकार द्वारा इन चौदह बैंकों को लगभग छियासठ करोड़ रुपया मुआवजे का देना होगा। सरकार उसे नकद न देकर बाण्डस् की शकल में देगी। साथ ही यह भी उम्मीद की जाती है कि लगभग दो हजार करोड़ रुपये सरकार के हाथ में सहज आ जायेंगे, जिन्हें वह उद्योग-धन्धों में लगा सकती है या प्रदेश-सरकारों को भी दे सकती है।

पिछले कई बरसों में ये बैंक अपना ध्यान खेती और छोटे-छोटे उद्योगों की तरफ दे भी रहे थे। जून १९६८ में जहां इन्होंने खेती में ६७ करोड़ रु० लगाये, वहां मार्च १९६९ में २४४ करोड़ रु०। इसी प्रकार छोटे उद्योगों में लगी रकम ३२२ करोड़ से ४३० करोड़ रु० पर पहुंचा दी। सन् १९६८ में, इन बैंकों ने ६७५ नयी शाखाएं खोलीं, जिनमें ४८८ देहाती और अर्द्ध-देहाती क्षेत्रों में थीं। ये सारे बैंक बड़ी कुशलता से काम भी कर रहे थे। लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि देश में चोरबाजार, तस्कर-व्यापार, सट्टा आदि प्रवृत्तियों को भी इन्हीं बैंकों से बल मिलता रहा है। इसलिए इनका राष्ट्रीयकरण बहुत आवश्यक था। अगर छोटे-मोटे बचे ४४ बैंकों का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया जाता तो और भी उचित होता।

लेकिन बैंकों का राष्ट्रीयकरण तभी सफल हो पायेगा जब सरकार इसे एक साध्य न मानकर साधन के रूप में इसका उपयोग करेगी। स्वराज-प्राप्ति के बाद कई क्षेत्रों में राष्ट्रीयकरण किया गया, मगर उससे अभीष्ट लाभ नहीं हुआ, क्योंकि सर्व-जनहित का ध्यान नहीं रखा गया और उलटे नौकरशाही कहीं ज्यादा हावी हो गयी। कौन नहीं जानता कि सरकार ने करोड़ों रुपया खेती में लगाया है, मगर वह इस तरह खर्च हुआ कि विषमता बढ़ गयी और नीचे के भूमिहीन या अन्य भूमिवान काश्तकारों को उससे कोई फायदा नहीं पहुंचा। जैसा एक अमरीकन विशेषज्ञ ने कहा है, भारत में पिछले दस-बारह बरस में "जेनस फार्मर्स" (साहब-बहादुर काश्तकारों) की एक नयी पौध खड़ी हो गयी, जो खेती को उद्योग और व्यवसाय की दृष्टि से देखती और जो छोटे काश्तकार को भूमिहीन बनाकर गांव की आर्थिक नाकेबन्दी करने पर तुली हुई है। नतीजा यह है कि ग्रामीण क्षेत्र में असमानताएँ उग्र रूप ले रही हैं और यही कारण है कि नक्सालवाद पनप रहा है और देहात में आये दिन हिंसा उभर आती है।

हमें यह भी नहीं भूलना है कि उद्योग के क्षेत्र में राष्ट्रीयकरण के सुन्दर परिणाम सामने नहीं आये हैं। यद्यपि कई सरकारी कारखाने मुनाफे पर चल रहे हैं, लेकिन कुल मिलाकर उनमें घाटा ही हुआ है। और जनता में बड़ा असंतोष है। सिमेण्ट, लोहा, खाद-जसी जरूरत की अनेक चीजों के दाम लगातार बढ़ते रहे हैं और सरकार बाजार पर अपना नियंत्रण नहीं कर पायी है। महँगाई की तो कोई सीमा ही नहीं। सन् १९४८-४९ का एक रुपया आज चौदह पैसे के बराबर रह गया है। इस वजह से आम आदमी दुःखी है और सरकार को उसका सहयोग नहीं मिल रहा है।

इसलिए बहुत सावधानी और सतर्कता की आवश्यकता है। राष्ट्रीयकरण का पूरा लाभ तभी होगा जब भारत-सरकार व्यवस्थित ढंग से और जागरूक होकर भारत की अर्थनीति का संचालन करेगी। अभी तो यह उन बन्धनों में जकड़ी हुई है, जो अंग्रेजी राज ने स्थापित किये थे। आज भी हमारा रुपया ब्रिटेन के पाउण्ड और अमरीका के डालर का तावेदार है, और विश्व के बाजार में उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। अगर राष्ट्रीयकरण के बाद नौकरशाही या सरकारी कर्मचारी स्वच्छन्द रूप से काम करने लगते हैं और जन-हित की उपेक्षा करते हैं तो आर्थिक स्थिति और भी बिगड़ जायेगी और रुपये का मूल्य और भी गिरेगा व उसकी साख कम होगी। हमें यह भी सावधानी रखनी होगी कि नौकरशाही और ऊँचे या मध्यम वर्ग के लोग मिलकर नीचले वर्गवालों और दीन-हीन जनता को ज्यादा न सतायें।

इस प्रकार राष्ट्रीयकरण से सरकार के ऊपर बड़ा भारी उत्तरदायित्व आ जाता है। अगर वह इसे साध्य मानकर चुप बैठ जाती है तो भयंकर अनर्थ होने की संभावना है।

—सुरेशराम

हिन्दी में अर्थशास्त्र की एकमात्र उच्च स्तरीय व सबसे पुरानी पत्रिका

सम्पदा

'सम्पदा' के अंकों के मुख्य विचारणीय विषय

- खाद्य-समस्या, कृषि की प्रगति और समस्याएं। विविध उद्योगों की प्रगति और उनकी समस्याएँ।
- विदेशी व्यापार—आयात और निर्यात की दिशा तथा भुगतान की स्थिति।
- देश की वित्तीय स्थिति और समस्याएँ—मुद्रा, बजट, बैंक और बीमा-कम्पनियाँ।
- केन्द्र और राज्यों के परस्पर-वित्तीय सम्बन्ध तथा उनकी आवश्यकताएँ।
- समाजवाद, साम्यवाद और सर्वोदय आदि का विवेचन। देश में सहकारिता और पंचायतों का विकास।
- देश की श्रम-आन्दोलन व श्रम-समस्याएँ।
- प्रति मास की प्रमुख आर्थिक घटनाएँ।
- आर्थिक प्रश्नों पर विचारपूर्ण और निष्पक्ष विवेचन।

प्रत्येक विषय पर अद्यतन और प्रामाणिक जानकारी तथा स्वतंत्र और निष्पक्ष चिन्तन 'सम्पदा' की अपनी एक विशेषता है। इसीके लिए हिन्दी में अर्थशास्त्र का दूसरा पर्यायवाची शब्द 'सम्पदा' हो गया है। आंकों और तालिकाओं से पूर्ण 'सम्पदा' का वार्षिक मूल्य केवल १० रुपये है। वी० पी० से 'सम्पदा' नहीं भेजी जाती। १० रुपये का मनीआर्डर या दिल्ली के किसी बैंक के नाम चेक भेज दीजिए। एक प्रति का मूल्य १ रुपया है। नमूने के लिए १ रुपया २५ पैसे भेजिए। —मैनेजर, 'सम्पदा'

२८।११ शक्तिनगर, दिल्ली-७

www.vinoba.in

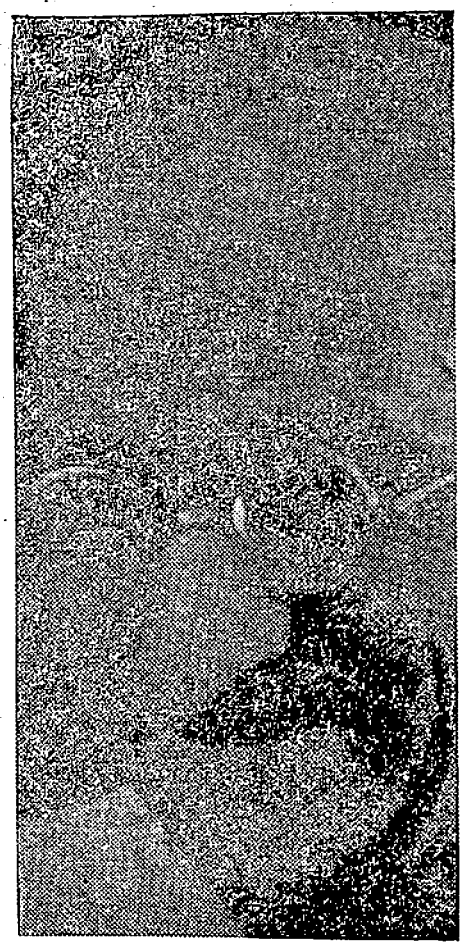

विवेकरहित विरोध
बनाम
बुनियादी परिवर्तन-प्रक्रिया

"शासन के खिलाफ विवेकरहित विरोध चलाया जाय तो उससे अराजकता की, अनियंत्रित स्वच्छंदता की स्थिति पैदा होगी और समाज अपने हाथों अपना नाश कर डालेगा।"

—गांधीजी

आज देश में आये दिन घेराव, धरना, लूटपाट, आगजनी, कथित सत्याग्रह की कार्रवाइयाँ लोकतंत्र में सामूहिक विरोध के हक के नाम पर होती हैं।

सर्वोदय-आन्दोलन भी वर्तमान समाज, अर्थ और शासन-व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह है। किन्तु, वह इसका एक नियंत्रित, रचनात्मक एवं अहिंसक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।

इसके लिए पढ़िए, मनन कीजिए :—

(१) हिन्द स्वराज्य — गांधीजी

(२) ग्रामदान — विनोबाजी

फिर एक जिम्मेवार नागरिक के नाते समाज-परिवर्तन की इस क्रान्तिकारी प्रक्रिया में योग भी दीजिए।

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी-समिति)
हुंकलिया भवन, कुम्हीगरों का भैंरू, जयपुर–२ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

महाराष्ट्र के पाँच जिलों में जिलादान के लिए तत्काल शक्ति केन्द्रित करने की योजना

www.vinoba.in

एरण्डोल में आयोजित सर्वोदय-मण्डल का अधिवेशन सम्पन्न

श्री गोविन्दराव शिंदे सर्वसम्मति से मण्डल के नये अध्यक्ष निर्वाचित

जलगाँव : ४ अगस्त। यहाँ से १६ मील दूर एरण्डोल नामक स्थान पर आयोजित महाराष्ट्र सर्वोदय मण्डल का त्रिदिवसीय सम्मेलन / सम्पन्न हुआ। एरण्डोल-निवासी जलगाँव जिला सर्वोदय मण्डल के संयोजक श्री नन्दलाल काबरा ने गाँव की सक्रिय सहायता से अधिवेशन के अतिथियों की पूरी आवभगत की। अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए आचार्य राममूर्ति ने प्रदेशदान के संकल्प को पूरा करने के संदर्भ में ग्रामस्वराज्य का समग्र चित्र प्रस्तुत करते हुए कार्यकर्ताओं से अपील की, कि वर्तमान भारत की परिस्थिति को देखते हुए बिना एक पल खोये हमें ग्रामस्वराज्य की शक्ति पैदा करने में जुट जाना चाहिए, वरना समय हमारा इन्तजार नहीं करेगा, और हम अवसर चूक जायेंगे।

अध्यक्षपद से मुक्त हो रहे प्रो० ठाकुरदास बंग ने भी अधिवेशन में प्रदेशदान की समग्र व्यूह-रचना करने की अपील करते हुए प्रदेश के कार्यकर्ता साथियों के प्रति अबतक प्राप्त सक्रिय सहयोग के लिए आभार व्यक्त किया और आगे जिम्मेदारी सम्भालनेवाले साथी की सफलता की कामना की। मंत्री श्री वसंतराव बोम्बटकर ने विस्तार से प्रदेश के कार्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया।

प्रदेशीय सर्वोदय मण्डल के अध्यक्षपद के लिए प्रस्तुत आठ व्यक्तियों में से किसी एक को सर्वसम्मति से चुनने के लिए काफी विचार-मंथन हुआ। अन्त में अधिवेशन के दूसरे दिन सबेरे अध्यक्षपद के लिए जिन लोगों के नाम आये थे, उन्हीं लोगों ने प्रदेश के तीन बुजुर्गों—सर्वश्री आचार्य भिसे, शेंदुर्णीकरजी, रा० कृ० पाटिल—की समिति पर निर्णय की जिम्मेदारी सौंप दी, और इस समिति द्वारा स्वीकृत अध्यक्षपद के लिए श्री गोविन्दराव शिंदे का नाम सभी लोकसेवकों ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया। इन बुजुर्गों ने श्री गोविन्दराव शिंदे जैसे तरुण और सक्रिय साथी के कंधों पर जिम्मेदारी डालकर, भारत की राजनीति में चल रहे भीष्मपितामहों के सत्ता-संघर्षों से भिन्न एक नया उदाहरण पेश किया। साथ ही लोकसेवकों ने सर्वसम्मति के निर्णय से गांधीजी द्वारा परिकल्पित लोकसेवक संघ की नैतिक नेतृत्व दे सकनेवाली क्षमता का आभास कराया। काश! गांधीजी के वसीयतनामे को भारत ने स्वीकार किया होता, तो आज उसकी तसवीर ही कुछ और होती! तब शायद पूरे भारत को ही नहीं, जगत् भर को नये किस्म का नैतिक नेतृत्व दे सकने की शक्ति यहाँ खड़ी हुई होती!

समाज पर आन्दोलन के प्रभाव और आम लोगों की तात्कालिक समस्याओं से जूझने के सवाल तो प्रायः हर जगह के कार्यकर्ताओं की सभाओं, सम्मेलनों के लिए हमेशा ताजे रहते हैं। यहाँ भी चर्चा जमकर हुई, और अंत में आम राय यही रही कि प्रदेशदान के संकल्प की पूर्ति में पूरी शक्ति लगा दी जानी चाहिए तथा तालुके और जिले ग्रामदान में आ जायँ, तो यहाँ ग्रामस्वराज्य के लिए लोकशिक्षण और लोक-शक्ति के संगठन के काम तत्काल शुरू कर देने चाहिए। श्री शंकरराव देव ने कार्यकर्ताओं से मार्मिक अपील की, कि जो संकल्प प्रदेशदान का लिया गया है, उसकी पूर्ति में पूरी शक्ति लगानी है।

प्रदेश के कुल २५ जिलों में से १३ जिलों में अभियान चलाने के लिए प्रारम्भिक कोष एकत्रित कर लिया गया है। चूँकि महाराष्ट्र में रचनात्मक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं की कोई बहुत बड़ी जमात नहीं है, इसलिए यहाँ स्थानीय कार्यकर्ता तैयार करने की अत्यधिक कोशिश हो रही है। प्रदेश सर्वोदय मण्डल के मंत्री श्री वसंतराव बोम्बटकर ने बातचीत के सिलसिले में बताया कि इस साल प्रदेश में ग्राम-निर्माण के काम में लगे कार्यकर्ताओं ने भी ग्रामदान-प्राप्ति के काम में लगने का निश्चय किया है। प्रदेश की सभी रचनात्मक संस्थाओं की मिलीजुली ग्रामस्वराज्य समिति ने भी अपनी शक्ति प्रदेशदान के लिए केन्द्रित करने का निर्णय लिया है। जिले के शेष १२ जिलों में कोष-संग्रह और कार्यकर्ता-निर्माण का काम शीघ्र ही शुरू होगा। उन जिलों में भी अनुकूलता पैदा करने के लिए अन्य जिलों की तरह श्री जयप्रकाश नारायण की यात्रा के कार्यक्रम आयोजित किये जायेंगे। श्री बोम्बटकर ने यह आशा प्रगट की कि राजगीर सर्वोदय-सम्मेलन तक थाणा जिले का जिलादान सम्पन्न हो जायगा। सितम्बर में वहाँ सघन अभियान चलाया जायगा।

श्री गोविन्दराव शिंदे की अध्यक्षता में महाराष्ट्र सर्वोदय मण्डल की २२ सदस्यीय कार्यकारिणी का गठन आगामी वर्ष के लिए हुआ है। श्री वंसन्तराव बोम्बटकर के अतिरिक्त सर्वश्री शिवशंकर पेंटे और राम देशपाण्डे भी मंत्री चुने गये हैं। —राही

विनोबाजी का कार्यक्रम

अगस्त '६९	स्थान	मील दूरी
१६ तक	राँची	—
१७	राँची से मुरहू	३३
१८	मुरहू से चक्रधरपुर	३३
१९	चक्रधरपुर से चाइबासा	१८
२२	चाइबासा से जगन्नाथपुर	३०
२३	जगन्नाथपुर से झींकपानी	१८
२४	झींकपानी से सरायकेला	३०
२६	सरायकेला से जमशेदपुर	२८
२८	जमशेदपुर से बूंडू	५२
२९	बूंडू से राँची	३०

पत्र-व्यवहार का पता —

१७ से २२ अगस्त तक :

विनोबा-निवास, बि० खा० ग्रा० संघ, चाइबासा, जिला सिंहभूम। टेलीफोन : १२५

२३ से २८ तक जमशेदपुर :

विनोबा-निवास, बि० खा० ग्रा० संघ, जमशेदपुर। टेलीफोन : ३३०७

www.vinoba.in

आगामी ११ सितम्बर से २ अक्तूबर तक

सर्वोदय-साहित्य प्रचार-बिक्री-अभियान के लिए

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन की कुछ चुनी हुई पुस्तकें

बापू की गोद में

लेखक : नारायण देसाई

अनुवादक : दत्तोबा दास्ताने

पुस्तक में लेखक ने अपने जीवन के पाँचवें वर्ष से लेकर सन् १९४२ तक के गांधीजी के सहवास और आश्रमों में किये गांधीजी के विविध प्रयोगों के हृदयस्पर्शी प्रसंगों का रोचक वर्णन किया है। 'संत सेवतां सुकृत वाधे' नाम से गुजराती में प्रकाशित मूल पुस्तक को गुजराती भाषा का साहित्यिक पारितोषिक प्राप्त हो चुका है। पुस्तक की प्रस्तावना में श्री दादा धर्माधिकारी लिखते हैं कि "मोहन और महादेव इस पुस्तक की दो विभूतियाँ हैं। हरि-हर की तरह उनका विभूतिमत्व अविभाज्य है।....आधुनिक भारत के विश्वतीर्थ साबरमती और सेवाग्राम के आन्तरिक जीवन के रुचिर शैली में हृदयस्पर्शी वर्णन इसमें कराये गये हैं।"

पृष्ठ : १७२ मूल्य : रु० ३-००

मनोजगत् की सैर

लेखक : मनमोहन चौधरी

मनोविज्ञान पर सर्व सेवा संघ का सर्वप्रथम और पठनीय प्रकाशन। काशी विद्यापीठ के उपकुलपति श्री राजाराम शास्त्री के शब्दों में इस पुस्तक में लेखक ने सामाजिक सन्दर्भ में मानवीय व्यवहारों को समझाने का प्रयत्न किया है।...सामाजिक व्यवहारों के आधार सर्वदा मनोवैज्ञानिक हुआ करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इस मौलिक तथ्य को समझाने के लिए विभिन्न समसामयिक समस्याओं का निरूपण किया है। विकास, मानस-प्रेरणाएँ, व्यक्ति और समाज तथा नेतृत्व और अपराध, इन चार खण्डों में बँटी यह पुस्तक मनोविज्ञान के अध्येताओं को, जिज्ञासुओं को विचार की एक नयी दिशा दिखलाती है। सरल और सुबोध भाषा में मानसिक गुत्थियाँ सुलझाने का एक उत्तम साधन। पृष्ठ : २२४ मूल्य : रु० ६-००

भागवत-धर्म-मीमांसा

लेखक : विनोबा

धर्मग्रन्थों के सार-संकलन के सन्दर्भ में विनोबा ने भागवत, एकादश स्कन्ध का भी सार, 'भागवत-धर्म-सार' के नाम से संकलित किया था, जिसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुका है।

प्रस्तुत पुस्तक उसका भी 'सार' कहा जा सकता है। जमशेदपुर निवास-काल में विनोबाजी ने अपनी सूक्ष्मग्राही प्रतिभा से इसी भागवत धर्म-सार के ९३ श्लोकों पर जो महत्त्वपूर्ण विवरणात्मक प्रवचन दिये, १२ प्रकरणों में इसमें वे संकलित हैं। इसके पढ़ने से भागवत-धर्म का तर्कशुद्ध और वैज्ञानिक, संतुलित स्वरूप ध्यान में आ सकता है। पृष्ठ : १६०, मूल्य : रु० २-००

गांधीजी और राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ

लेखक : शंकरलाल बैंकर

गांधीजी के सम्पर्क में रहकर उनका उल्लेख्य मार्गदर्शन पाकर देश में महत्त्वपूर्ण काम करनेवालों में श्री शंकरलाल बैंकर का प्रमुख स्थान है। उन्होंने 'गांधीजी अने राष्ट्रीय प्रवृत्ति' नामक अपनी गुजराती पुस्तक में बापू के संस्मरण और अनुभव संकलित किये हैं। यह पुस्तक उसीका हिन्दी रूपान्तर है।

पुस्तक चार भागों में विभाजित है। पहला भाग सन् १९१४ से १९२२ का कालखण्ड है, जिसमें असहयोग और सत्याग्रह का विवरण है। सन् १९२२ से १९२३ के कालखण्ड के दूसरे भाग में यरवदा-जेल के अनुभव हैं। सन् १९२३ से १९३९ के तीसरे भाग में उनके खादी-कार्य एवं खादी-प्रवृत्ति पर प्रकाश है। चौथे भाग में खादी-काम और खादी-प्रवृत्ति का प्रचार-सम्बन्धी वर्णन है। निकटतम और घनिष्ठतम बापू की एक ठोस प्रमाणभूत सामग्री इस ग्रन्थ में है।

पृष्ठ : ५३२ मूल्य : रु० १०-००

उपवास से जीवन-रक्षा

लेखक : हर्बर्ट एम० शेल्टन,

अनुवादक : धर्मचन्द सरावगी

उपवास के सम्बन्ध में अनुभूत वैज्ञानिक प्रामाणिक ग्रन्थ। उपवास से रोगों का निवारण भी हो सकता है और शक्तिवर्द्धन भी। इस रहस्य को कम ही लोग जानते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में वजन घटाने के लिए उपवास, शक्तिवृद्धि के लिए उपवास, रोगों में उपवास, उपवास की उपलब्धि, स्वास्थ्य-रक्षा और उपवास, उपवास से कायाकल्प, वजन बढ़ाने के लिए उपवास, तीव्र रोगों में उपवास, पुरानी व्याधियों में उपवास, दमा और उपवास, आदि ३४ महत्त्वपूर्ण अध्यायों में उपवास की अद्भुत शक्ति का रहस्य खोला गया है। प्रत्येक परिवार के लिए संग्रहणीय।

पृष्ठ : २१६ मूल्य : रु० ३-००

सत्याग्रह-विचार

लेखक : विनोबा

स्वराज्य-आन्दोलन के सिलसिले में गांधीजी ने सामूहिक सत्याग्रह का शास्त्र विकसित किया था। किन्तु आजादी के बाद आज लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था में किये जानेवाले सत्याग्रह में कुछ-न-कुछ अन्तर पड़ना स्वाभाविक है। विनोबा ने इसमें मुख्यतया इसी जटिल प्रश्न पर विचार प्रकट किये हैं। लोकतांत्रिक शासन में सत्याग्रह की प्रक्रिया उग्र, उग्रतर, उग्रतम हो सकती है, यह इसमें ११ प्रकरणों द्वारा स्पष्ट किया गया है। इसे सत्याग्रह-शास्त्र का पूरक माना जा सकता है।

पृष्ठ : ९२ मूल्य : रु० १-२५

शाहाबाद जिलादानके बढ़ते चरण

www.vinoba.in

शाहाबाद की एक ओर कैमूर पर्वत की हरियाली है, तो दूसरी ओर गंगा की पवित्र धारा। इन दोनों के बीच में शाहाबाद के ६ हजार ९६ गाँव बसे हुए हैं, जिनकी जनसंख्या ३१ लाख है। शाहाबाद जिला कुल ४१ प्रखण्डों में बँटा हुआ है। शाहाबाद के निवासी वीरता, त्याग, धन, ऐश्वर्य, विद्वत्ता एवं सामाजिक जागरूकता के क्षेत्र में युगों से अग्रणी रहे हैं।

शाहाबाद जिलादान का संकल्प होने पर बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ तथा जिला सर्वोदय-मण्डल के कुछ साथी ग्रामदान के काम में जुट गये, किन्तु आन्दोलन में जो गति आनी चाहिए थी वह नहीं आयी। बिहार के कई जिलों का जिलादान पूरा होता गया, किन्तु शाहाबाद पत्थर की चट्टान की तरह अड़ा रहा! सोचा जाने लगा कि पत्थर टूटे तो कैसे। इसी बीच श्री ध्वजा बाबू ने आज्ञा दी कि मुजफ्फरपुर, गया और दरभंगा के लोग शाहाबाद जिलादान को सफलीभूत बनाने में जुट जायँ। जिला-समाहर्ता के कक्ष में जिले के सभी सरकारी अधिकारियों को श्री जयप्रकाशजी ने सम्बोधित किया। श्री जयप्रकाशजी के सम्बोधन का ऐसा जादुई प्रभाव हुआ कि सभी प्रखण्डों में ग्रामदान की चर्चा शुरू हो गयी।

इसी बीच रचनात्मक कार्य में लगे खादी एवं भूदान के वरिष्ठ कार्यकर्ताओं की बैठक श्री रमापति चौधरी, मंत्री, बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ ने डेहरी खादी-भण्डार में बुलायी, जिसमें श्री जयलोक ठाकुर; श्री मथुरा प्रसाद सिंह, श्री सत्यनारायण सिन्हा, सह-मंत्री, जिला सर्वोदय मण्डल, मुजफ्फरपुर आदि लोग उपस्थित थे। श्री मथुरा बाबू ने जिले के चारों अनुमण्डलों में चार संयोजकों को मनोनीत कर काम में गति लाने की प्रेरणा दी। अब क्या था, श्री रमापति चौधरी तथा श्री जयलोक ठाकुर के दिशा-निर्देशन से काम करने की योजना बन गयी और कार्य प्रारम्भ हो गया।

श्री ध्वजा बाबू तथा वैद्यनाथ बाबू के निर्देशन पर श्री मथुरा बाबू ने अपने सहयोगी सहमंत्री श्री सत्यनारायण सिन्हा को निर्देशित कर दिया कि जबतक शाहाबाद जिलादान न हो जाय तबतक मुजफ्फरपुर जिला सर्वोदय मण्डल के सारे कार्यालय कार्यकर्ता-सहित शाहाबाद चले जायँ। इससे एक समाँ बँध गया। दरभंगा से श्री रमापति बाबू के भेजे हुए करीब ४० कार्यकर्ता पहुँच गये। गया से श्री केशव भाई के भेजे हुए कार्यकर्ता आये। इसका असर अच्छा पड़ा, जिसकी वजह से ग्रामदान का कार्य तीव्र गति से प्रारम्भ हो गया।

बक्सर अनुमण्डल क्षेत्र गंगा का दियारा है। समुचित वातावरण के अभाव में काम में कहीं-कहीं गतिरोध उत्पन्न होते ही प्रायः सभी प्रखण्डों और दियारे क्षेत्र के सभी गाँवों में, ब्रह्मपुर से लेकर राजपुर तक कार्यकर्ता छा गये। प्रायः इस टोली में सजग एवं सचेतन कार्यकर्ता थे और सभी जगह वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के परिभ्रमण से कठिन एवं दुरूह क्षेत्र भी अनुमण्डलदान में शीघ्र ही आ गया। पहले ऐसा प्रतीत होता था कि बक्सर के मोर्चे पर कार्यकर्ता नाकामयाब हो जायँगे, परन्तु देखते-देखते अनुमण्डलदान हो गया।

इसके बाद सभी कार्यकर्तागण हर्षोल्लास से भभुआ क्षेत्र की ओर बढ़े। सरकारी अधिकारियों का पूर्ण सहयोग तो था, परन्तु कार्यकर्ताओं को रहने के लिए जगह नहीं मिलती थी और न खाने-पीने की सुविधा थी। ग्रामदान का काम प्रारम्भ होते ही दुर्गावती क्षेत्र में बारिश शुरू हो गयी। चारों तरफ प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। गाँव में प्रायः कार्यकर्ता जाते और फिर वापस लौट आते थे। दुर्गावती प्रखण्ड के गाँवों में सिवाय पैदल जाने का दूसरा कोई उपाय नहीं था। श्री मथुरा बाबू गाँव-गाँव में पैदल घूम-घूमकर लोगों से सम्पर्क साध रहे थे, उनकी पदयात्रा से कार्यकर्ताओं में नवउत्साह एवं उमंग का संचार हुआ।

सतत संपर्क के बाद दुर्गावती प्रखण्ड के वरिष्ठ लोगों के हस्ताक्षर हो गये और प्रखण्डदान घोषित हुआ। शेष रामगढ़, चान्द और चैनपुर प्रखण्डों में भी स्थानीय कार्यकर्ताओं द्वारा कार्य प्रारम्भ था। बाहरी लोगों की शक्ति जुटने पर काम में सरलता एवं सहजता आ गयी।

अबतक प्राप्त आँकड़ों के आधार पर कुल ४१ प्रखण्डों में से १८ प्रखण्डों का दान घोषित हो चुका है और १२ प्रखण्डों में सघन रूप से कार्य चल रहा है। एक सप्ताह में अन्य १२ प्रखण्डों का दान-कार्य समाप्त हो जाने की संभावना है। शेष ११ प्रखण्डों में काम करने के संयोजन का भार वरिष्ठ कार्यकर्ताओं पर सौंप दिया गया है।

बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ के मंत्री श्री रमापति बाबू के निरीक्षण से आन्दोलन में ताजगी आ जाती है और श्री वैद्यनाथ बाबू के आगमन पर संकल्प में और दृढ़ता, और काम में गति आ जाती है। आशा है, इस सप्ताह में शाहाबाद जिलादान घोषित हो जायगा।

—सत्यनारायण सिन्हा,
सहमंत्री, जिला सर्वोदय मण्डल, मुजफ्फरपुर

बिहारदान की प्रगति

(३१ जुलाई '६९ तक)

जिला	प्रखंडदान	प्रखंडदान बाकी
दरभंगा	४४	
मुजफ्फरपुर	४०	
पूर्णिया	३८	
सारण	४०	
चम्पारण	३६	
गया	४६	
सहरसा	२३	
मुंगेर	३७	
धनबाद	१०	
पटना	२८	
पलामू	२५	
भागलपुर	२१	
हजारीबाग	४२	
सिंहभूम	१३	१९
संताल परगना	२७	१४
शाहाबाद	२९	१२
राँची	१०	३३
योग :	५०९	७८

भारत में

ग्रामदान : १,१५,८९८
प्रखण्डदान : ८६८
जिलादान : २२

विनोबा-निवास
राँची

—कृष्णराज मेहता

www.vinoba.in

बिहार का तेरहवाँ जिलादान हजारीबाग

राँची जिले में बाबा के घूमने का कार्यक्रम बन रहा था। जुलाई के प्रथम सप्ताह में हजारीबाग से विद्यासागरजी आकर कार्यक्रम पक्का कर गये कि २८ जुलाई को बाबा रामगढ़ आ जायें। वहाँ जिलादान-समर्पण-समारोह होगा। बाबा ने कहा—"यह बहुत बड़ा पुरुषार्थ का काम है कि जिले के हर गाँव में पहुँचने की योजना कर ली जाय और उसके मुताबिक गाँव के हर परिवार में पहुँचने का काम हो। इस सबका गणित लगाकर पहले से नक्की कर लिया जाय कि अमुक तारीख तक जिलादान-प्राप्ति का काम पूरा हो जायेगा।"

× × ×

२४ जुलाई '६९ को बाबा राँची जिले के खूँटी सबडिवीजन के पड़ाव पर थे। हजारीबाग के डिप्टी कमिश्नर की खबर आयी कि बाबा ३१ जुलाई को रामगढ़ आयें। बाबा ने कहा—'एवमस्तु।'

× × ×

३१ की सुबह से आसमान बादलों से घिरा था। रामगढ़ हायर सेकेण्डरी स्कूल के प्राचार्य परेशान, कि सभा कैसे होगी! कभी धूप से आसमान जगमगा जाता, पर देखते-देखते बादल घिर जाते। दिन भर उन्होंने गिना, बारह बार विद्यालय का अहाता धूप से जगमगाया और फिर पानी से धुल गया।

सभा चार बजे से होनेवाली थी। विद्यालय का बरामदा पश्चिम रुखवाला! साढ़े तीन बजे कड़ाके की धूप, पाये की आड़े में ही बैठना संभव था।

बाबा आ रहे हैं, उनका दर्शन कर लिया जाय! दर्शकों की भीड़ जमती जा रही है।

प्राचार्य महोदय संकोच में हैं कि बाबा को धूप में कैसे बिठायें। शामियाना बाहर लगाया जाना या दरी बिछाना संभव नहीं था। अन्त में उन्होंने तय किया कि बाबा हाल में बैठकर प्रवचन करेंगे और श्रोता बाहर लाउडस्पीकर से सुनेंगे।

रामनन्दन भाई आये। दरी बाहर बिछाने को कहा और मंच को बरामदे पर लगाने को। प्राचार्यजी परेशान, बाबा की आँखों पर सूर्य की रोशनी पड़ेगी। रामनन्दन भाई ने कहा, "बाबा की यात्रा में मैं साथ रहा हूँ। उनका मानस जानता हूँ। आँखों पर रोशनी की जिम्मेवारी मेरी।" प्राचार्य बोले—"बाहर जरा भी बूँदा-बाँदी हुई तो लोग बिखर जायेंगे।" फिर भी रामनन्दन भाई ने जिम्मेदारी ली। प्राचार्य महोदय ने झिझकते हुए कहा—"आप लोग हमारे अतिथि हैं। सभा का स्थान देना, व्यवस्था करना मेरा काम था, बिगड़ेगा तो आप जानिए।"

× × ×

शाम के सवा चार बजे चिलचिलाती धूप। पाँच मिनट भी धूप में खड़े रहने में तकलीफ! दरी बाहर डाल दी गयी। मंच बरामदे पर। बाबा समय से आ गये। श्यामप्रकाशजी ने मंच पर से कहा—"भूदान में इस जिले में भारत में सबसे अधिक जमीन मिली और बँटी। बिहार का सबसे पहला प्रखंडदान इसी जिले में हुआ। अब मुझे संतोष है कि जिलादान में यह बिहार का अंतिम जिला नहीं है।"

बिहार का यह तेरहवाँ जिलादान!

× × ×

बाबा का आशीर्वचन चल रहा था। चिलचिलाती धूप अचानक समाप्त। आसमान में बादल घने होने लगे। बाहर दर्शकों की एक नजर बाबा पर और दूसरी बादल पर। क्या यह बाबा के दर्शन में बाधक होगा?

बाबा बोल रहे हैं—"यह प्रभु की कृपा है कि इतना बड़ा काम हो रहा है। किसी व्यक्ति को यह अभिमान नहीं होना चाहिए कि यह काम उसने किया है!..."

टप, टप, टप! आसमान टपकना शुरू हुआ। पहले सामने बैठे बच्चे बिखरने लगे। बाबा ने भाषण रोककर कहा—"बच्चों को छुट्टी, वे खेलने चले जायें।" बूँदे जमने लगीं। लोग जबतक बरामदे पर आते हैं, दरी समेटी जाती है तबतक तो वर्षा वेग से शुरू हो गयी। बाबा के भाषण में बाधा तो पड़ी। पर दर्शकों को संतोष था कि बाबा को भर नजर देख लिया। डिप्टी कमिश्नर महोदय ने संतोष की साँस ली। सभा के आयोजकों को संतोष था कि सभा सफल हो गयी। कार्यकर्ताओं को संतोष था कि मेहनत का फल मीठा हुआ। जिला शिक्षा-पदाधिकारी प्रसन्न थे कि शिक्षकों ने भरपूर काम किया। डी० सी० के चेहरे पर हर्ष था कि सब सरकारी कर्मचारी जिलादान में तनमन से लगे रहे।

अपने को ध्यान आया रामगढ़ में यह आनन्द-वर्षा सन् १९६९ में जिलादान के समर्पण के अवसर पर ही नहीं, बल्कि २९ वर्ष पूर्व सन् १९४० में कांग्रेस-अधिवेशन के समय भी हुई थी। —हेमनाथ सिंह

हजारीबाग जिलादान में

कुल गाँव	:	७,०४८
ग्रामदान में शामिल	:	५,९३९
कुल प्रखण्ड	:	४२
ग्रामदान में	:	४२
कुल जनसंख्या	:	२१,८६,२२७
ग्रामदान में	:	१७,५९,५६९
(कोईलरी क्षेत्र की जनसंख्या	:	६२,८५७ को छोड़कर)

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।